

**THE BOOK WAS  
DRENCHED**

UNIVERSAL  
LIBRARY

**OU\_178978**

UNIVERSAL  
LIBRARY



OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H 89 11  
1395K Accession No. G.H. 3169

Author पुहप्पा, के.के.

Title कवि-श्रीमान् ; कल्लड १९६२

This book should be returned on or before the date last marked below.

---

--	--	--	--



# कवि-श्री माला

\* कन्नड़ \*

कवि :

‘ कुवेम्पु ’

सम्पादक—अनुवादक

एम. एस. कृष्णमूर्ति

“ भारत सरकार की ओर से भेंट ”



राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धा

प्रकाशक :

मोहनलाल भट्ट

मन्त्री :

राष्ट्रभाषा प्रचार समिति,

हिन्दीनगर, वर्धा



सर्वाधिकार सुरक्षित

प्रथम संस्करण—३०००

मई, १९६२

मूल्य—रु. २/-



मुद्रक :

मोहनलाल भट्ट

राष्ट्रभाषा प्रेस,

हिन्दीनगर, वर्धा



हर्षका विषय है कि राष्ट्रभाषा-प्रचार-समिति, वर्धा अपने कार्य कालके २५ वर्ष सन् १९६१ में पूरे कर रही है। इस उपलक्ष्यमें मनाये जानेवाले रजत-जयन्ती महोत्सवके अवसर पर सभी भारतीय भाषाओंके मान्य कवियोंका तथा उनके उत्कृष्ट काव्यका परिचय 'कवि-श्री माला' की पच्चीस पुस्तकोंमें हिन्दी-गद्यानुवाद सहित प्रकाशित करनेकी योजनाके अन्तर्गत प्रस्तुत ग्रन्थ पाठकोंके समक्ष आ रहा है।

यद्यपि किसी भी भाषाके सर्वश्रेष्ठ काव्य-सर्जकका निश्चय करना एक कठिन कार्य है, फिर भी अपनी सीमाओंको ध्यानमें रखते हुए गण्यमान्य उन-उन भाषाओंके विद्वानोंकी रायसे ही चुनावका कार्य सम्पन्न किया गया है।

प्रत्येक पुस्तकके आरम्भमें जिस भाषाके कविकी रचनाओंका चयन किया गया है, उस भाषाके साहित्यका परिचय और कवि विशेषका परिचय दिया गया है। जिस भाषाके दो कवियोंका चुनाव किया गया है, उनका चुनाव करते समय सन् १९२० से पूर्वका साहित्य और १९२० से बादका साहित्य—इस तरहसे एक विभाजन-रेखा ध्यानमें रखी गई है। इसका कारण यह है कि लगभग सन् १९२० के पूर्वके तथा १९२० के बादके साहित्यमें प्रवाहित विचार-धारामें एक विशेष प्रकारका अलगाव-सा पाया जाता है।

श्री एम. एस. कृष्णमूर्तिने प्रस्तुत पुस्तकमें संकलित साहित्यको चुनने, काव्यशको सम्पादित तथा अनूदित कर सारी सामग्रियोंको इस रूपमें प्रस्तुत करनेमें सहयोग दिया है। कविताओंका भूषण देखनेमें श्री गुरुनाथजी जोशीका सहयोग मिला है। संग्रहको आवरण डिजाइनको बनवा देनेमें श्री व्ही. एन. अडारकरजी (डीन, सर जे. जे. इन्स्टीट्यूट आफ अप्लाइड आर्ट, बम्बई) का उदार सहयोग मिला है, उसके लिए समिति सभीको आभारी है।

इसके अतिरिक्त छपाई तथा अन्यान्य दृष्टियोंसे जिन-जिनका प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष सहयोग मिला है, उनके प्रति भी समिति अपनी कृतज्ञता व्यक्त करती है।

आशा है, प्रस्तुत संग्रह पाठकोंको रुचिकर एवं उपयोगी प्रतीत होगा।

*हिन्दुस्तान*

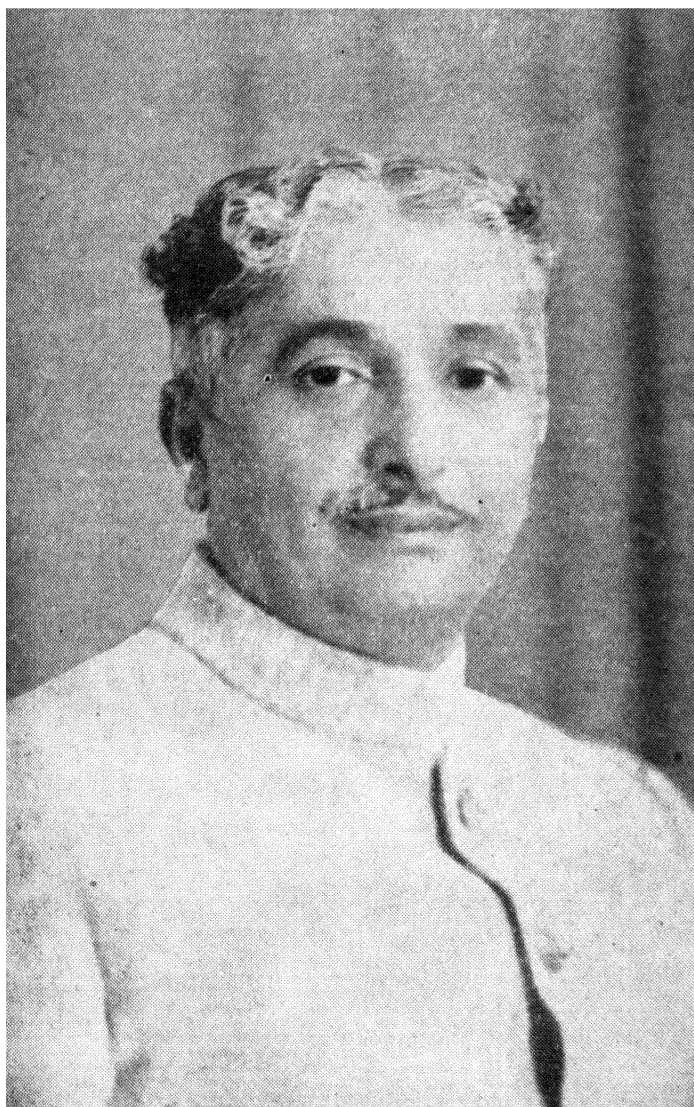
मन्त्री,

राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धा

## अनुक्रमणिका

	पृष्ठांक
कन्नड़-साहित्य-परिचय [ सन् १९२० से आजतक ]	१
कवि-परिचय	३५
काव्य-सञ्चय	५९

[ कवि-श्री माला-कन्नड ]



‘कुवेम्पु’



# कन्नड़ साहित्य परिचय

[ मन् १९२० से आजतक ]



## कन्नड़ भाषा और उसका साहित्य



[ प्रारम्भसे सन् १९२० ई० तकका कन्नड़ साहित्यका संक्षिप्त परिचय कवि-श्री माला—दत्तात्रेय रामचन्द्र बेन्द्रे में दिया गया है । ]

प्रायः दो सहस्र वर्षोंसे कन्नड़ साहित्य-स्रोतस्विनी अविच्छिन्न रूपसे प्रवाहित होती आ रही है। कन्नड़, भारतकी प्राचीनतम भाषाओंमेंसे एक है। संस्कृत और तमिलके उपरान्त कन्नड़का ही स्थान है। द्रविड़ भाषाओंमें प्राप्त प्रथम लिखित साहित्य कन्नड़का ही है। नवी शताब्दीमें ही उसमें 'कवि राजमार्ग' जैसे उत्कृष्ट लाक्षणिक ग्रन्थके दर्शन होते हैं। कन्नड़में प्रथम रूपमें साहित्य रचना करनेका श्रेय जैनियोंको मिलता है। जैनियोंके पश्चात् वीरशैव तथा वैष्णवोंने साहित्य-सर्जना की है। इस प्रकार प्राचीन कन्नड़ साहित्य स्रोतस्विनीमें जैन, वीरशैव एवं वैष्णव-धाराओंका संगम द्रष्टव्य है।

यदि कन्नड़ साहित्यका उदय संस्कृत साहित्यसे प्रेरणा पाकर हुआ, तो आधुनिक साहित्य अंग्रेजी साहित्यसे अनुप्राणित है। उन्नीसवीं शताब्दीके उत्तरार्द्धमें

पाश्चात्य सम्पर्कके कारण भारतभरमे सर्वत्र नवीन जागरणकी लहरें दौड़ पड़ी। भारतके राष्ट्रीय जीवनमे जो-जो क्रान्तियाँ हुई, उनका प्रभाव कन्नड़ साहित्यपर भी पड़ा है। राष्ट्रीय जागृति, राष्ट्रीय आन्दोलन आदिका प्रभाव कन्नड़ साहित्यपर स्पष्ट दिखाई देता है। सामाजिक क्षेत्रमे राजा राममोहनराय, आध्यात्मिक क्षेत्रमे स्वामी रामकृष्ण परमहंस और विवेकानन्द, राजकीय क्षेत्रमे लोकमान्य तिलक, महात्मा गाँधी आदि महाविभूतियोंने और कविताके क्षेत्रमे कवीन्द्र रवीन्द्रनाथने भारतके गौरवको बढ़ाया। पुरातत्वकी खोज, संस्कृत साहित्यके प्रसार आदिने भारतकी कीर्तिको दिग् दिगन्तने फैलाया। इन सबका प्रभाव कर्नाटकपर भी पड़ा राइस फ्लैट आदि द्वारा 'Epigraphika Karnatika' आदि जैसे प्रकाशनने कर्नाटकके प्राचीन शिलालेखोंकी रत्न राशियोंको सामने लाकर कन्नड़ जनताको स्वरूपदर्शन करानेमे महत्व पूर्ण योग दिया। स्व. रा. नरसिंहाचार्यजीके 'कविचरिते' (१९०९, तीन भाग) तथा आलूर वेकटरावजीके 'कर्नाटक गत वैभव' आदिने कर्नाटककी मध्यवर्गीय जनतामे अपूर्व जागरण उत्पन्न किया। सन् १९१४ मे 'कन्नड़ साहित्य परिषद' की स्थापना कर्नाटकके इतिहासमे एक महत्वपूर्ण घटना है।

इन सबके होने हुए भी कन्नड़ साहित्यका नवोदय कुछ विलम्बसे हुआ। इसका कारण यह है कि कन्नड़ भाषी प्रदेश बम्बई, हैदराबाद, मद्रास, मैसूर आदि भिन्न-भिन्न भागोमे खण्ड-खण्ड होकर बँट गया था। सभी कन्नड़ भाषा-भाषियोंके एकीकरणकी कल्पनाके बिना यह कष्ट साध्य था। राष्ट्रीय आन्दोलन तथा पुरातत्व-खोजोंने उसे एक नया रूप दिया। कर्नाटककी जनतामे अखण्ड कर्नाटककी कल्पना जाग उठी। इस नवीन जागरणमे प्रथम महायुद्धने भी काफी योग दिया है। अतः आधुनिक कन्नड़ काव्यका वास्तविक आरम्भ वीसवीं शताब्दीके द्वितीय दशकसे होता है। प्रां. गोककने भी यही बात कही है --

“Modern Kannada poetry came into the own in the second decade of this century. (Karnataka Darshana, pp. 132)

सन् १९२० ई. से १९६० तकके इस काल-खण्डको हम दो भागोमे बाँट सकते हैं-- (१) दशकके बीचका साहित्य (२) द्वितीय महायुद्धोत्तर साहित्य।

प्रथम महायुद्धके समाप्त होने-होने कन्नड़ साहित्य एक नया मोड़ लेने लगता है। इस काल तक मध्यम वर्गकी स्थिति अत्यधिक निश्चित हो चुकी थी। वह देशमे सबसे अधिक शिक्षित और जागरूक वर्ग था। युद्ध अथवा क्रान्तियोंका शिकार यही जनता बनती है। प्रथम महायुद्धके भीषण परिणामोंने भारतीय जीवनको ही झकझोर डाला। प्राचीन परम्पराएँ नष्ट भ्रष्ट होने लगी, रूढ़ियाँ छिन्न-भिन्न होने लगी। सर्वत्र नवीन भावनाओं, नवीन विश्वासों तथा जीवनको नवीन दृष्टिकोणसे देखनेकी प्रणालियोंका ज्योतिर्मय उत्साह दृष्टिगत हो रहा था। महायुद्धके भीषण परिणाम, वैज्ञानिक आविष्कार, आदिने समग्र विश्वको चौंधिया दिया। इन

कारणोंसे मध्यमवर्गीय व्यक्ति कवि अधिक आत्मनिष्ठ होने लगा। उसने जीवनकी समस्याओंके उत्तरकी अपने अन्तरमें खोजनेका प्रयास किया। ससारकी वह व्यक्तित्वनिष्ठ दृष्टिकोणसे देखने लगा। इस प्रकार डम नवोदयके नवीन आन्दोलनका ध्वज-चिह्न व्यक्तित्ववाद बना। फलतः गीतिका आदि व्यक्तित्वनिष्ठ काव्योंकी सृष्टि प्रचुर मात्रामे होने लगी।

हिन्दीमें दो महायुद्धोंके बीचकी कवितामें जो जो विशेषताएँ विद्यमान हैं वे ही कन्नड़के इस नवोदय कालीन साहित्यमें भी देखी जा सकती हैं। वे निम्न लिखित विशेषताएँ हैं —

- (१) नवीन सौन्दर्य बोध एवं नवीन अभिव्यक्ति
- (२) नई काव्य-भूमि और नया सम्बेदनशील व्यक्तित्व
- (३) मानव और मानवताके प्रति नई आत्मियता और प्रेम
- (४) नये समाजकी रचना जिसके अन्तर्गत व्यक्ति पूर्ण विकासको प्राप्त कर सके, जहाँ धिक्मता न रहे एवं न्याय और समता जिसकी साम्य हो।
- (५) कर्नाटककी एक अपनी सस्कृति है जो भारतीय सस्कृतिसे भिन्न नहीं है और भारतीय सस्कृतिके विकासमें कर्नाटकका भी महत्वपूर्ण योगदान है।

यह तो कविताकी बात हुई। केवल कन्नड़ ही नहीं वरन् प्रत्येक भारतीय भाषाके साहित्यमें इस समय गद्यकी प्रधानता लक्षित होती है। अँग्रेजीसे स्फूर्ति पाकर नाटकोंका स्वतन्त्र विकास भी इसी समय होने लगता है। विचार-साहित्य एवं वैज्ञानिक साहित्य लिखनेकी प्रवृत्ति भी इसी समयसे दिखाई देती है।

स्व. प्रो. बी. एम. श्रीकण्ठैय्याजी कन्नड़ साहित्यके इस नवोदयके मन्त्रदाता एवं पुरोहित हैं। जो काम भारतेन्दु हरिश्चन्द्र तथा महावीर प्रसाद द्विवेदीने हिन्दीमें किया, उसे अकेले स्व. बी. एम. श्रीकण्ठैय्याजीने कन्नड़में किया। प्रो. बी. एम. श्रीकण्ठैय्याजी (१८८४ ई. से १९४६ ई. तक) मैसूर विश्वविद्यालयके अँग्रेजी विभागके अध्यक्ष थे। संस्कृत, कन्नड़, अँग्रेजी तथा ग्रीक भाषाओंकी साहित्य-संज्ञानामे उन्होने अच्छी तरह अध्ययन किया था। अतः इन्होंने अँग्रेजी, ग्रीक आदि पाश्चात्य साहित्यके विभिन्न आन्दोलनोंसे प्रेरणा पाकर वहीं नवोदय, वहीं जागरण कन्नड़में भी लानेकी ठानी। श्री बी. एम. श्रीकण्ठैय्याजीमें पूर्व कन्नड़ कविता अपनी रूढ़ि व छन्दोंमें विभक्त होकर निर्जीव व निष्प्रभ हो रही थी। कविता निरन्तर प्रवाह-मान एक जीवन्त वाहिनी है, यदि उसकी गति एक ही जगह रुक जाए, परिवर्तन विहीन हो जाए, तो उसका अवसान दूर नहीं है।

कन्नड़ साहित्यकी यही परिस्थिति इस समय थी। स्व. बी. एम. श्रीकण्ठैय्याजी इस परम्परागत जरा-जर्जरित काव्य-काननमें नवोदयका वसन्त-गान करनेवाले कवि-कोकिल हैं।

‘इंग्लीष गीतगळु’, पालप्रेवकी ‘गोल्डन ट्रेझरी’ की चुनी हुई कविताओं का कन्नड़में अनूदित ग्रन्थ है जिसमें अधिकांश शेली, कीट्स, वर्ड्सवर्थ, बायरन, बर्न्स आदि स्वच्छन्दधाराके कवियोंकी कविताएँ अनूदित हैं। ‘इंग्लीष गीतगळु’के भाव एवं भाषा तथा छन्दोंने कन्नड़ काव्य-लोकमें एक मन्वन्तर ही उपस्थित कर दिया। इसके पूर्व सस्कृतके ‘मत्तेभ विक्रीडित’, ‘शार्दूल विक्रीडित’, ‘स्रग्धरा’ आदि तथा ‘कन्द’ आदि प्राकृत जन्य छन्द कन्नड़-काव्यका गला घोट रहे थे। त्रिपदि, चौपदि, रगळे, पिरियक्कर, सागत्य आदि देशी छन्दोंका प्रचलन नहीं हो पा रहा था। स्व. बी. एम. श्रीकण्ठैय्याजीने इस दिशामें एक बहुत बड़ा परिवर्तन कर दिया।

‘इंग्लीष गीतगळु’के भाव भाषा तथा छन्दोंने तरुण साहित्यकोंके सामने एक नूतन धारा बहा दी। टॉल्स्टॉयके विषयमें एक बार गॉर्कीने कहा था—“He opened new vistas for us, new crops to reap” ठीक यही कथन स्व. बी. एम. श्रीकण्ठैय्याजीपर भी लागू होता है। बी. एम. श्रीकण्ठैय्याजी कविकी अपेक्षा कवि-निर्माता अधिक थे। कर्नाटक जन-जागृतिमें व्यस्त रहनेके कारण उनको कविता करनेकी फुरसत बहुत ही कम मिली; फिर भी उनकी ‘शुकगीते’, ‘हीगनसु’ आदि सग्रहमें जो कविताएँ हैं, वे उच्च कोटिकी हैं। ग्रीकके दुःखान्त नाटकोके आदर्श पर उन्होंने ‘अश्वत्थामन्’, ‘पारसीकरु’ एवं ‘गदायुद्ध’ आदि नाटक लिखकर उस क्षेत्रमें भी युवकोंका मार्ग दर्शन किया।

वे कन्नड़के प्रगाथात्मक गीतोंके प्रवर्तक थे। ‘कन्नड़ताय नात’, ‘कन्नड़ बावुत’ आदि प्रगाथात्मक गीतोंमें उनको अत्यन्त सफलता मिली है। ‘इंग्लीष गीतगळु’ की प्रथम कवितामें उन्होंने अपनी कविताकी रीतिके बारेमें इस प्रकार कहा है :—

इवळ सोबगनवळु तोट्टु,  
नोडबयसिदे,  
अवळ तोडिगे इवळिगिट्टु  
हाड बयसिदे।

[मैंने इस कामिनी (कन्नड़ कविता) की वेश-भूषा उसे (आंग्ल कविताको) पहनानी चाही और उसकी वेश-भूषा इसे पहनानेकी इच्छा की है।]

निस्सन्देह अपने इस प्रयत्नमें उनको शत प्रतिशत सफलता मिली है।

बी. एम. श्रीकण्ठैय्याजी एक चिरन्तन प्रेरणाके चिरजागृत प्रदीप थे। इनके आदर्शपर काव्य रचना करनेवाले नौजवान शिष्योंकी एक मण्डली ही तैयार हो गई, जिसमें डॉ. के. बी. पुट्टप्पा, पु. ति. नरसिंहाचार्य, प्रो. टी. नं. श्रीकण्ठैय्या एम. आर. श्रीनिवासमूर्ति, जी. पी. राजरत्नं, प्रो. बी. सीतारामय्य आदि विख्यात कवि मुख्य हैं। इसी पथपर स्वतन्त्र रूपसे चलनेवाले बी. एम. श्री. के मित्रोंमें

सर्वश्री डॉ. डी. वी. गुण्डप्पा, डॉ. मास्ती वेंकटेश अय्यंगार आदि मुख्य हैं। इस मण्डलीके कवियोंने मिलकर 'तळिरु (पल्लव) तथा 'किरिय काणिके' नामक कविता संग्रह प्रकाशित कराए। इस मण्डलीको हम 'तळिरु मण्डली' कह सकते हैं।

इन कविजनोंने षट्पदी, त्रिपदी, सागत्य, कन्द वृत्त आदि परम्परागत छन्दोंको छोड़कर अँग्रेजीके ढंगपर सॉनेट, ओड, ब्लैक वर्स, आदि छन्दोंका सफल प्रयोग किया। ब्लैक वर्स कन्नड़के 'रगळे' छन्दका समीपवर्ती था। अतः 'सरळरगळे या ब्लैक वर्स कन्नड़मे इतना खप गया कि वह कन्नड़का अपना छन्द हो गया। 'रगळे'के आदि अनुप्रासको छोड़कर अन्त्यानुप्रास रखा गया। आज सरळ रगळमे 'कथनकवन' (आख्यानात्मक काव्य) से लेकर गीति नाटक तथा महाकाव्य तक लिखे गए हैं। ब्लैक वर्सका इतना सफल प्रयोग भारतकी अन्य भाषाओंमे कदाचित् ही हुआ होगा।

दक्षिण कन्नड जिलेमे इसी समय 'सुवासिनी' (सम्पादक वी. रामराव) 'कन्नड कोकिले' 'कृष्णमूर्ति' आदि साहित्यिक पत्रिकाएँ निकल रही थी। श्री मुळिया तिमम्पय्या, पञ्ज मंगेशराव, गंविन्द पै, एम. एन. कामत आदि कवि गण 'मित्र मण्डली' के द्वारा प्राचीन एव नवीनके समन्वयको लिए हुए काव्यकी सर्जना कर रहे हैं।

उत्तर कर्नाटकमे इसी प्रकार का मन्वन्तर लानेवालोंमे श्री दत्तात्रेय रामचन्द्र बेन्द्रेजीका नाम अन्यतम है। आचार्य श्रीकण्ठैयाजीने जो काम मैसूरमे किया वही कार्य महाकवि बेन्द्रेजीने उत्तर कर्नाटकमे किया। बेन्द्रेजीके सहयोगियोंमे सर्वश्री खानोलकर, आनन्दकन्द (बंगरगी कृष्ण शर्मा) तथा सालि रामचन्द्रराव आदि मुख्य हैं। धारवाड़ इस आन्दोलनका केन्द्र स्थल है।

यदि वी. एम. श्रीकण्ठैयाजीकी मण्डलीने इग्लैण्डके स्वच्छन्दतावादी आन्दोलन से स्फूर्ति पाई तो धारवाड़की इस मण्डलीने आर्यलैण्ड रोमाण्टिक आन्दोलनके अप्रदूत ए. ई. सिञ्ज, यीट्स आदि से प्रेरणा ग्रहण की।

१९२१ ई के आस-पास बेन्द्रेजीने उत्तर कर्नाटकमे 'गळेयर गुम्पु' (मित्र मण्डली) नामक एक मण्डलीकी स्थापना की। उत्तर कर्नाटकके युवकों मे कर्नाटक साहित्य तथा सांस्कृतिक परम्पराके बारेमे नवजागरण फैलानेमे इस मण्डलीका अनुपम योगदान है। यह मण्डली 'स्वधर्म' नामक एक मुखपत्र चला रही थी। इसके पश्चात् 'जयकर्नाटक' तथा 'जीवन' आदि साहित्यिक मासिक पत्रिकाओंको चलाकर इसने एक अद्भुत क्रान्ति की। हिन्दीमे 'सरस्वती' पत्रिकाकी भाँति इन पत्रिकाओंने विशेषतः 'जयकर्नाटक' ने, लोक साहित्यका संग्रह, कर्नाटकमे राष्ट्रीय जागृति, सांस्कृतिक जागरण आदिके विषयमे महत्वपूर्ण कार्य किए। इस मण्डलीके सदस्योंमे सर्वश्री डॉ. रं. श्री. मुगुळी, पद्मश्री वी. के. गोकक, मयूरचैत्र, नारायणसगम, आनन्दकन्द, कोण्णूर, खानोलकर आदि मुख्य हैं। जिस प्रकार कवि यीट्सको 'आयरिश

पुनर्जागरण' के श्रेय मिलता है, उसी प्रकार महाकवि द. रा. बेंद्रेजीको इस आन्दोलनके प्रवर्तनके सूत्रपातका श्रेय प्राप्त है। बिशप पर्सीकी भाँति बेंद्रेजी भी लोकगीतोंसे प्रेरणा पाकर, लोक चेतनाको पहचानकर काव्य रचनामें लगे। यदि मैसूरके प्रतिनिधि कवि कुवेम्पु (डॉ. के. वी. पुट्टप्पा) जीकी शैलीमें गार्भार्थ एवं संस्कृत शब्दोंकी बहुलता है, तो बेंद्रेजी तथा उनके अनुयायियोंकी भाषा-शैली लोकगीतोंके अधिक निकट है, सरल है, प्रसाद-पूर्ण है।

इस मण्डलीके सभी सदस्योंके काव्य तथा जीवनको महर्षि अरविन्द तथा कवीन्द्र रवीन्द्रनाथकी विचार-धाराने अनुप्राणित किया है। यहाँ तक कि श्री द. रा. बेंद्रेजीका कथन है "अरविन्द तथा रवीन्द्र मेरे दो नेत्र हैं। नेत्रोंके दो होनेपर भी दृष्टि एक है।" 'गुम्फु' के अनेक सदस्य जिनमें नारायण सगम, कोण्णूर आदि मुख्य हैं, शान्ति निकेतन हो आए हैं। श्री बेंद्रेजी तो वर्षमें कमसे कम एक बार पाण्डिचेरीकी यात्रा कर आते हैं। बेंद्रेजीकी कविता एक ओर महर्षि अरविन्दके दर्शनसे अनुप्राणित है तो दूसरी ओर ए. ई. यीट्स आदिके रहस्यवाद, स्वप्न-दर्शनसे प्रभावित है।

आधुनिक काव्यका प्रधान प्रभेद है गीतिकाव्य। गीतिकाव्य हमारे लिए नई चीज नहीं है, किन्तु उसमें जो व्यक्तिनिष्ठ अंश (Subjective element) है वह बिलकुल आधुनिक है। प्राचीन काव्य वस्तुनिष्ठ (Objective) अधिक था। उसमें व्यक्तिकी अभिव्यक्ति की महत्ता नहीं थी। रीति, ग्रथन शैली ही उन काव्योंकी कसौटी रहती। मध्यकालीन कवितामें भक्ति ही प्रधान वस्तु थी, काव्यकी अधिष्ठात्री थी। किन्तु स्वच्छन्दतावादियोंकी दृष्टिमें काव्य अज्ञान एवं अप्राप्तको प्राप्त करनेकी शाश्वत चेष्टा, वस्तुजगतसे मनुष्यके चिरन्तन एवं दुर्निवार अन्तर्विरोधको व्यक्त करनेका माध्यम है। महायुद्धके भीषण परिणामोंने जीवनमें सर्वत्र अव्यवस्था ला दी। हमारे समाजके ढाँचें ही झकझोर डाला। रोमाण्टिक धाराने व्यक्ति और समाज या वस्तु जगतके इस वैपरीत्यको चिरन्तन मानकर व्यक्तिवादकी पताका फहराई।

'इंग्लीश गीतगळु' में छन्दोंकी विविधताके साथ-साथ विषयकी विविधता थी। प्रेम, देश-प्रेम, प्रकृति-प्रेम, शौर्य, सुख-दुःख, राग-द्वेष, जिज्ञासा, श्रद्धा, सौन्दर्य सत्य आदिसे प्रेरित होकर अँग्रेजीके कवियोंने जो कविताएँ लिखी थी, वे इस नवोदयकी आलोक स्तम्भ बनीं। बी. एम. श्रीकण्ठैय्याजीके सुन्दर अनुवादनने तरुण कवियोंके सामने राजमार्ग ही उन्मुक्त कर दिया। प्राचीन कवितामें अनुप्रासोंकी बहुलता थी, पादसख्या निर्दिष्ट थी। चार या उससे अधिक चरणोंवाले पद्यकी कल्पना ही नहीं थी। किन्तु 'इंग्लीश गीतगळु' की कविताओंने उनके सामने एक नया ही आदर्श प्रस्तुत किया, जिसके आलोकमें कवि मुक्त काव्य गगनमें विचर सकें।

उत्तर कर्नाटक तथा मैसूरके इस आन्दोलनके कारण भाषाका भी काफी परिमार्जन हुआ। शब्द सृष्टिमें भी क्रान्ति हुई। 'कनसु', 'कणसु', 'नल्', 'ओलुमे', 'नल्ल', 'ऋत', 'तिंगळु' आदि सैकड़ों प्राचीन शब्दोंमें नवीन प्राण फूँके गए। बंगला साहित्यसे प्रभावित होकर बंगलामें प्रयुक्त किन्तु कन्नड़में अप्रचलित अनेक संस्कृत शब्द भी प्रचलित हुए जिनमें 'रूपसी', 'नीलिमा', 'छवि', 'निशि', 'निर्शाय', 'लास्य', 'तपन', 'कालिमा', 'कूल' आदि मुख्य हैं।

यूरोपके रोमाण्टिक सम्प्रदायके कवियोंकी भाँति बेंद्रे, कुवेम्पु आदि कवियोंमें भी उत्साह, शक्ति, आवेग, आदर्शके प्रति आस्था, अज्ञातके प्रति कौतूहल, प्रणय, विरह आदि भावनाएँ प्रधान हैं। गोंचरमे अगोंचरकी खोज, पार्थिवमे दिव्य आवरण और प्रतिष्ठा, मानवीय भावनाओंके प्रति निसर्गका योगदान और मानवीय सीमाओंमें असीमका दर्शन, इस दृष्टिसे आलोकित रवीन्द्रनाथके काव्यका प्रभाव भी इनपर काफी मात्रामें पड़ा।

सन् १९१९-१९३९ ई. तककी धारा उत्थान या नवोदय कालीन धाराके नामसे अभिहित की जा सकती है। १९३९-१९५० ई. तककी धारा, जिसमें—'रामायणदर्शन' जैसे सर्व श्रेष्ठ महाकाव्यकी रचना होती है—विकास कालीन धारा कही जा सकती है। सन् १९५० ई. से आज तक प्रवृत्त धाराको प्रयोगकालीन धारा कह सकते हैं। किन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि १९२० ई. से पूर्व आधुनिक काव्यकी रचना हुई ही नहीं। उत्थान कालीन धाराके पूर्वयुगके, जिसे हम साधना युग कह सकते हैं—प्रतिनिधि कवि है मुद्दण। इस धारामें नवोदयके लिए तैयारियाँ हो रही थीं, विस्फोट होनेके पूर्व अन्दर ही जो आग सुलगती रहती है उसके दर्शन होते हैं। मुद्दणमें नूतन काव्यके जन्मके पूर्वकी प्रसन्न वेदना दर्शित है, प्राचीन सम्प्रदाय-मोह तथा नवीन क्रान्तिकी झकार इन दोनोंके बीच पड़कर डोँडाडोल होनेवाले मानसका दर्शन होता है।

उत्थानकालीन धारा जिसे हम नवोदय धारा भी कह सकते हैं, वास्तवमें सर्वांग धारा है। इस समयके सभी कवि अतीव शक्तिशाली हैं। प्रचलित परम्पराओं को छिन्न-भिन्नकर एक नूतन सम्प्रदायकी सृष्टि करने की अगस्त्य-शक्ति इन कवियोंमें है। क्या भाव, क्या भावा और क्या शैली, सभीमें एक नवीनता का सञ्चार हुआ। इस युगकी काव्य साधनासे कन्नड़का गौरव बढ़ा है। बी. एम. श्रीं कण्ठैयाजीने एसी शुभ घड़ीमें इसका आरम्भ किया कि तबसे आजतक कन्नड़की सर्वांगीण वृद्धि ही हो रही है। इस धाराके प्रतिनिधि कवियोंमें महाकवि कुवेम्पु, महाकवि बेंद्रे आदि मुख्य हैं।

सन् १९३९ ईसवीके द्वितीय महायुद्धने फिर एक बार हमारे जीवनको झकझोर डाला। मधुपावलियोंके साथ गुञ्जन करते, नक्षत्र यात्रामें लीन तथा एकान्त संगीतमें निमग्न रहनेवाला, हस्तिदन्त सौध ( Ivory tower ) में बैठे-बैठे

कल्पनाके पंख खोलकर उड़नेवाला कवि अचानक हिल उठा। उसका स्वप्न-सौन्दर्य जीवनकी कठोर वास्तविकतासे टकराकर चकनाचूर हो गया। उसके आदर्श उसके जीवन मूल्य इस युद्धके प्रभञ्जनमें पड़कर टूक-टूक हो गए। फलतः कवि वास्तविक भूमिपर विचरने लगा, जीवनकी जटिल कुटिलताओंपर, कुण्ठाओंपर दृष्टिपात करने लगा। कालपक्षीको देखकर विस्मित होनेवाला, उषाकी हँसीसे तरंगित होनेवाला महाकवि बेन्द्रेका कवि अब कल्पनाके पंख उड़ानेके बदले रुद्रवीणा बजाने लगता है। मुरली बजाकर ग्वालबाल बने प्रकृतिके कोमल क्रोडमें क्रीड़ा करनेवाले, प्रकृतिके रुद्र रमणीय सौन्दर्यपर मुग्ध होकर गानेवाले कवि कुवेम्पु-को भी अब मुरलीके स्थानपर पाञ्चजन्य बजाना पड़ा है। इस प्रकार विश्व व्याप्त इस प्रगतिशील आन्दोलनमें इस युगके कवि भी सक्रिय रूपसे भाग लेते हैं। किन्तु बेन्द्रे, कुवेम्पु आदि कवि प्रधानतः 'सुन्दरम्' के कवि हैं।

रोमाण्टिक सम्प्रदायके दोषों तथा नव्य काव्य (प्रयोगवाद) की आवश्यकताके बारेमें नव्य काव्यके धुरन्धर कवि श्री गोपालकृष्ण अडिगर्जाका वक्तव्य द्रष्टव्य है :—

“भावातिरेकका व्यर्थ कोलाहल, अनुभूतिकी अतिसरल बनानेकी ओर झुकाव, शब्दजालका जादू, संगीत परवशताके परिणाम प्रसूत गद्यत्व, अर्थ शून्यता, अध्यात्मके स्वाँगमें आत्म प्रवञ्चनका प्रयत्न, रोमाण्टिक काव्यके ये सब दोष, रोग बनकर काव्य सृष्टिके संहारक बन रहे हैं।”

“उन्नीसवीं शताब्दीके आंग्ल कवि वर्ड्सवर्थ, शेली, कीट्स, आदि रोमाण्टिक कवियोंसे प्रेरित हमारा आधुनिक कन्नड़ काव्य अपनी चरम सीमापर पहुँच चुका है। पर इस सम्प्रदायका सत्त्व आज समाप्त हो गया है। अब वह अपनी अवनतिपर है। उसके सब दोष आज उभर रहे हैं और सभीको खटकते भी हैं। पहले धरतीपर पैर रखकर ही नक्षत्रकी ओर हाथ बढ़ाया जाता था, किन्तु अब कवि धरतीको तजकर ऊपर उड़ रहा है, काव्य, दर्शनके भारसे दबता जा रहा है। अर्थोंका स्थान शब्द ले रहे हैं। प्रत्येक भाव तथा अनुभूति सत्यसे दूर भाग रही है। ऐसी परिस्थितिमें काव्यको पुनः रक्त-दान देना चाहिए। काव्यमें फिर मिट्टीकी गन्ध लानी है। कविजनोंको फिरसे यह जान लेना चाहिए कि इस जगतमें दूर जाकर काव्य जी नहीं सकता। केवल यथार्थ, इन्द्रियगम्य वस्तुएँ ही काव्यका विषय नहीं बन सकती हैं। इस ससारमें हमारे चारों ओर जो वस्तुएँ दिखाई पड़ती हैं, वे जितनी सत्य हैं उतनी ही सत्य हैं उनके बारेमें हमारे मनमें उठनेवाली भावनाएँ। काव्यके लिए पाञ्चभौतिक वस्तुओंकी जितनी आवश्यकता है, उतनी ही आवश्यकता है हमारे आदर्श कल्पना एवं स्वप्नोंकी भी। इन दोनोंका सम्मिलित पाक ही काव्य है। जिसमें यथार्थताका, अनुभूतियोंका, आदर्श स्वरूपके स्वप्नोंका एक भी अंश नहीं है, वह काव्य नहीं कहला सकता। इस

दृष्टिसे हमें अँग्रेजीके विख्यात कवि इलियट, आडेन आदिसे प्रेरणा लेनी है। किन्तु हमारी नई कविता उसका हूबहू अनुकरण नहीं कर सकती। हमारी नई कविता हमारे अपने देशके नवीन वातावरण, जनजीवन एवं नवीन भाषा परिपाक की परिमितिके अन्तर्गत रहेगी, इसे हमें कभी नहीं भूलना चाहिए।”

कन्नड़ काव्यमें आज रोमाण्टिक सम्प्रदाय अस्तप्राय है। अडिग, शर्मा जैसे शक्तिशाली कवियोंके कारण प्रयोगवाद जोरोंपर है।

प्रयोगवाद हमारे यहाँ नैसर्गिक तौरपर नहीं आया। पश्चिममें बिम्ब-वादके प्रादुर्भावकी जो जो परिस्थितियाँ उद्भूत हुई थीं वे हममें नहीं रहीं। हमने प्रत्यक्ष रूपसे द्वितीय महायुद्धकी भीषण विभीषिकाका एवं तज्जन्य उच्छ्वलताका, अराजकताका, सांस्कृतिक दिवालियेपनका ( Cultural bankruptcy ) का अनुभव नहीं किया, न हमारे रोमाण्टिक सम्प्रदायके कवि हीं पाश्चात्य सम्प्रदायकी ‘अति’ पर पहुँचे थे। ‘कला कलाके लिए’ वाला दाद कन्नड़में झाँक भी नहीं पाया। यह हर्षकी बात है कि कन्नड़के रोमाण्टिक सम्प्रदायके किसी भी कविने जीवनका तिरस्कार नहीं किया। पश्चिममें बिम्बवाद रोमाण्टिक सम्प्रदायकी प्रतिक्रियाके रूपमें आया। वैज्ञानिक प्रगति, औद्योगिकरण, राजनैतिक विफलताएँ, धर्मकी दुर्बलता, नए-नए मनोवैज्ञानिक संशोधन, समाज-विज्ञानके नए-नए तथ्य, युद्धके परिणामस्वरूप उद्भूत विच्छ्वलित मनोवृत्ति, संस्कृतिहीनता आदि इस आन्दोलनके कारण हैं। किन्तु इन सबके अभावमें भी हमारे कवि इनकी मानसिक अनुभूति करने लगे। फलतः आज वे यदि दुरूह बन गए हों तो कोई आश्चर्य नहीं।

इस धाराके प्रतिनिधि कवि हैं सर्वश्री: गोपालकृष्ण अडिग, वी. के. गोंकाक बी. सी. रामचन्द्र शर्मा, मसली, वेंकटरमणाचार, चेन्नवीर कणवि, के. एस. नरसिंहस्वामी आदि।

धारवाड़के ‘गंळेर गुम्पु’ के प्रवर्तक तथा प्रतिनिधि कवि बन्द्रे उच्च कोटिके युग प्रवर्तक कवि हैं। आन्तरिक सत्य सौन्दर्यकी साकार करने-वाले सफल गायक हैं। प्रकृति-प्रेम, मानवीय-प्रेम, देश-प्रेम, दैवी-प्रेम, सामाजिक समस्याएँ आदि इनके काव्यके विषय हैं। बन्द्रेजी प्रधानतः रहस्यवादी कवि हैं। उनकी अधिकांश कविताएँ अरविन्द-दर्शनसे अनुप्राणित हैं।

‘गरि’ ( पख ) नामक कविता संकलनके प्रकाशनके पश्चात् आपने कन्नड़ साहित्यके महाकविके रूपमें प्रसिद्धि पाई। लोंकीतोंके माधुर्य तथा प्रसाद-गुणसे ये अधिक प्रभावित है। ‘गरि’ ‘नादलीले’, ‘सखीगीत’, ‘उय्याले’, ‘गंगावतरण’, ‘मूर्तिमत्तु कामकस्तूरि’ ‘कृष्णा कुमारी मत्तु हाडु पाडु’ ‘अरुळु मरुळु’\*, ‘उत्तरायण’ आदि संग्रहोंमें उनकी सात सौसे भी अधिक कविताएँ

\* इस कृतिपर कविको सन् १९५५-५७ ई. में साहित्य अकादमीसे पुरस्कार मिला है ॥

संगृहीत है। उनकी 'बेळगु' ( उजाला ) 'हृदिक हारुतदे नोडिदिरा', ( पक्षी उड़ रहा है, देखा क्या ? ) 'कुणियोंगुबारा' ( नाचें, आ ) 'हृदय समुद्र', 'श्रावण' आदि कविताएँ विश्व भारतीका शृंगार कर सकती हैं। 'हेणद हिन्दे' ( शकवे पीछे ) 'अन्नावतार', 'कुरुडुकाञ्चण' ( अन्ध काञ्चन ) पुट्ट विधवे' ( बाल विधवा ) आदि उनकी प्रगतिवादी कविताएँ हैं। 'हृदय समुद्र', 'सच्चिदानन्द', 'लावण्य' आदि उनकी रहस्यवादी कविताएँ हैं। 'बेळुदिळ्ळगनीड', 'श्रावण' आदि उनकी छायावादी कविताएँ हैं। बेंद्रेजीकी कल्पनाएँ मुक्तगगनमें विचरनेवाले विहंगोंकी भाँति स्वच्छन्द हैं। वे आध्यात्मिक भावनाके एक सौन्दर्य-द्रष्टा कवि हैं; मानव हृदयसे निःसृत होनेवाली अक्षय स्तर लहरियोंको इन्द्र धनुषके रंगोंसे तरंगित करनेवाले जादूगर हैं। बेंद्रेजी नादलोल हैं। सरलसे सरल शब्दोंमें अत्यन्त सबल भावनाओंको व्यक्त करनेकी अद्भुत शक्ति उनकी शैलीमें है। रूपक अन्य कवियोंके लिए जहाँ एक अलंकार है, वहाँ बेंद्रेजी बिना श्लेष और रूपकोके बोल हीं नहीं सकते। वे एक सफल नाटककार, सहृदय समालोचक तथा कहानीकार भी हैं।

'गळयर् गुम्पु' के सदस्योंमें दूसरे उल्लेखनीय कवि हैं पद्मश्री प्रो. बी. के. गोंकाक। 'समुद्रगीतेगळु' सरळ रगळे, (Blank Verse) में लिखी उनकी तन्मयता तथा उर्वरा कल्पना-शक्तिकी प्रतिनिधि कृति है। गोंकाकजी प्रधानतः मानवतावादी कवि हैं। इनके 'बाळदेगुळदलिल' नामक कविता संग्रहपर इनकी स्पष्ट छाप है। बेंद्रे तथा कुबेम्पुर्जकी भाषा सिद्धि इनमें न रइतपर भी इनकी अभिव्यक्तिमें काफी शक्ति है। इनके 'द्यावापृथ्वी' काव्य संग्रहकी सन् १९६१ का साहित्य अकादमी पुरस्कार मिला है। उसमें संगृहीत कविताओपर महर्षि अरविन्दके दर्शनकी स्पष्ट छाप है। रोमाण्टिक कवि गोंकाक प्रयोगवादी काव्य-धाराके भी सफल कवि हैं। 'नव्य कवितेगळु' इनकी प्रयोगवादी कविताओंका संग्रह है। इसके अतिरिक्त प्रो. गोंकाक एक सफल उपन्यासकार तथा आलोचक भी हैं। आजकल आप हैदराबादके 'सेंट्रल इन्स्टीट्यूट ऑफ इंग्लिश' के डायरेक्टर हैं।

डॉ. रं. श्री. मुगुली तथा आनन्दकन्दका क्षेत्र समित्त है। मुगुलीजीके 'वासिंग' ( माला ) में उनका प्रकृति-प्रेम तथा सौन्दर्य दर्शन प्रतिबिम्बित है। भावनाओंकी सुदूरगंभीरता तथा भाषाकी सरलता हीं इनकी कविताओंकी विशेषता है। मुगुलीजी एक सफल आलोचक हैं। इनके 'कधड साहित्य चरित्रे' को साहित्य अकादमीका पुरस्कार मिला चुका है।

आनन्दकन्दजीकी 'विरहिणी' प्रणय गीतोंका सकलन है। उनपर कवीन्द्र-रवीन्द्रका प्रभाव काफी पड़ा है। उनके गिशुगीत काफी जनप्रिय हो चुके हैं।

स्व. 'मधुरचेन्न' गुम्पु के एक और रहस्यवादी कवि हैं। लोकगीतोंकी शैलीमें इन्होंने अध्यात्मके जटिल तत्वोंका बहुत हीं मार्मिक निरूपण किया है। केवल भाषा हीं नहीं, उनकी काव्य-प्रतिमाएँ, अलंकार, छन्द सभी लोक भण्डार

(लोकगीत) से लिये गए हैं। उनका “नम्र नल्ल” (मेरा प्रियतम) इस युगकी श्रेष्ठ रहस्यवादी कृति है। उनके गीत हिन्दी साहित्यकी कवयित्री महादेवी वर्माजीके गीतोंका स्मरण दिलाते हैं। इस पारकी वेदना, उम पारका अलौकिक एवं असीम अव्यक्त सौन्दर्य, प्रियाकी असीम विरह वेदना आदि अतिशय भाूमिकताके साथ चित्रित हैं। ससीममे असीमको देखना, सान्तमें अनन्तकी झाँकी आदि सुकुमार तथा मधुर भाषामें व्यञ्जित हैं, मधुरचेन्नजी हमारे प्राणोंकी अनन्त पीडाकी आकुलताके अमर गायक हैं। जडभरत, प्रह्लादनरेगल्ल आदि इस प्रान्तके अन्य उल्लेखनीय कवि हैं।

बी. एम. श्रीःकण्ठैय्याजीके नेतृत्वमे काव्य-रचना करनेवाले तल्लिहमण्डलीके प्रधान कवि हैं सर्वश्री कुवेम्पु (डा. के. वी. पुट्टप्पा), पु. टि. नरसिंहाचार्य, वी. सी. तारामय्या, जी. पी. राजरत्नं, ती. नं. श्रीःकण्ठैय्या, के. एस. नरसिंहस्वामी आदि। प्रकृति-प्रेम, ऐतिहासिक प्रज्ञा प्रसूत कन्नड प्रेम, देशप्रेम, आदिसे इस मण्डलीके कवियोंने स्फूर्ति पाई। इस दलके प्रतिनिधि कवि हैं पद्मश्री डॉ. के. वी. पुट्टप्पाजी। ‘कुवेम्पु’ इनका काव्य नाम है।

कुवेम्पुजी बी. एम. श्रीःकण्ठैय्याजी द्वारा प्रवर्तित पथके अग्रणी हैं। रामकृष्ण परमहंस एवं विवेकानन्दसे ये प्रभावित हैं। इनकी वर्तमान कविताओपर महर्षि अरविन्दका प्रभाव है। इनके ‘कोळु’ (मुरली) ने तो कन्नड-काव्य-काननमे अलौकिक माधुरीकी वर्षा की। ‘नविलु’, ‘पक्षिकाशि’ आदि कविता-संकलनमे उनका प्रकृति-प्रेम उमड़ पड़ा है। ‘पाञ्चजन्य’ मे संगृहीत प्रगतिवादी कविताओंने कन्नड-साहित्यमे एक युगान्तर उपस्थित किया है। ‘प्रेम काश्मीर’, ‘चन्द्रमञ्चकेवा चकोरि’, ‘जनागुवा’ आदि संकलनमे इनके प्रणय गीत संगृहीत हैं। ‘इक्षुगंगात्रि’, ‘अग्निहंस’ आदिमे इनके रहस्यवादी गीतोंका संकलन है। ‘कृत्तिके’ में सुनीतों (sonnet) का संकलन है। कुवेम्पुजीकी प्रतिभा बहुमुखी है। जीवनका ऐसा कोई भी क्षत्र नहीं है, जिसका स्पर्श इनकी लेखनीने न किया हो। ‘चित्रांगदा’ रवीन्द्रनाथ ठाकुरके ‘चित्रा’ के आदर्शपर लिखा एक खण्ड-काव्य है। किन्तु कुवेम्पुजीकी अक्षय क्रांतिकी कौमुदी है उनका महाकाव्य ‘रामायण दर्शन’। यह ग्रन्थ ‘महा छन्दस’ छन्दमें लिखा गया है। इस छन्दको कवि द्वारा सरळ रगळे (Blank Verse) का विकसित रूप ही मानना चाहिए। कुवेम्पुजीकी रामायण किरी भी भाषाको गौरवान्वित करनेवाली महान् कृति है। यह रामायण केवल रामके सम्बंधमें ही नहीं है, बल्कि ‘अन्नमय कोश’से लेकर ‘आनन्दमय’ कोश तक पारिणाभिक तथा यात्रा करनेवाले जीवका ज्वलन्त इतिहास है। इस पर अरविन्द-दर्शन, उपनिषद् तथा होमर, मिल्टन आदि पाश्चात्य कवियोंका भी प्रभाव पड़ा है। इसमे महोपमा (Homeric Similies) तथा सम्मूर्तनों (Imageries) की भरमार है। वाल्मीकि रामायणके सभी पात्र-‘काव्यर

अनादृत'—भी इसमें पुनर्जीवित हो उठे है। कुवेम्पुर्जीका रावण माइकेल मधुसूदन दत्तके रावणकी भाँति महान हो उठा है। उर्मिला, कैकेयी, मन्थरा आदि कविके कारुण्यजलमें पड़कर अमर हो उठी है।

कुवेम्पुर्जी प्रधानतः 'सुन्दरम्'के कवि है। उनका प्रभु परम सुन्दर बनकर आता है। ब्राँउनिककी भाँति ये भी 'The world is a beauty and to love is duty' के माननेवाले हैं। किन्तु कुवेम्पुर्जी 'सुन्दरम्' तथा 'शिवम्' में कोई अन्तर नहीं देखते हैं। ये प्रकृतिके अनन्य पुजारी हैं। मानव तथा प्रकृतिके बीच तादात्म्य भावको कुवेम्पुर्जीमें देख सकते हैं। उपमा, रूपक आदि अलंकार भी उन्होंने प्रकृतिके भण्डारसे लिए हैं। कुवेम्पुर्जीकी दार्शनिक गम्भीरताने कन्नड़को आत्मदान दिया है। उनके काव्यमें कल्पनाकी चिरमुक्त चिरनूतन तरंग-मल्लिकाओंकी जो प्राण-प्रतिष्ठा है, नित्य नूतन सौन्दर्यके रूपमें नित्य सत्यकी जो झाँकी है, उससे कन्नड़ साहित्यकी गौरव-वृद्धि हुई है। कुवेम्पुर्जीका कवि हृदय प्रकृतिके सर्व-व्यापक स्वरूपका अनन्य द्रष्टा है। उनकी भाषा गम्भीर एवं संस्कृत बहुला है। कोमल कान्त पदावली उनकी शैलीकी विशेषता है। कुवेम्पुर्जी एक सफल आलोचक, सफल गीत-नाटककार, सफल जीवनी-लेखक तथा गद्य-लेखक है।

मास्ती वेंकटेश अय्यगार, 'श्रीनिवास' जी परम्परावादी कवि हैं। अपने जीवनकी अनुभूतियोंको आर्द्रतासे सरलतम भाषामें चित्रित करनेमें मास्तीजी अद्वितीय हैं। कन्नड़में पहली बार 'सुनीत' (Sonnet)की रचना करनेका श्रेय इनको मिलता है। इनकी कविताओंमें वर्पाकालीन नदीका आवेगोन्माद नहीं, शरत्कालीन तरंगिणीकी शान्त धारा है। उन जैसे सुकुमार भावोंके पारखी कदाचित् ही मिलते हैं। 'मलार', 'रामनवमी', 'नवरात्रि' आदि उनके कविता संकलन हैं। मास्तीजीका गीत नाटक—'यशोधरा' मैथिलीशरण गुप्तजीकी 'यशोधरा' की भाँति एक सफल कृति है। प्रसादपूर्ण शैली एवं कहानी विद्याके प्रवर्तकके लिए मास्तीजीका नाम कन्नड़ साहित्यमें सदा स्मरणीय रहेगा। मास्तीजी हमारे कहानी-सम्राट् हैं।

प्रो. वी. सीतारामय्याजीकी कविताओंमें उनकी सूक्ष्म दर्शिता तथा लोकानुकम्पा मुखरित है। 'द्राक्षिदाळिबे', 'दीपगळु' आदि सकलनोंमें भाव तथा विचारोंके संगम दर्शित होते हैं। 'कस्मै देवाय' दिनकरकी कविताकी भाँति एक विचार-प्रेरक कविता है। 'अर्भीः', 'शबरी', 'मृगशालेय', 'सिंहगळु', 'गडिदाटु' आदि कविताओंमें उनकी काव्य वाणी सर्जितहो जगमगा उठी है। भाव-समृद्धि, विचार-गम्भीरता इनकी कविताओंकी विशेषताएँ हैं। उनकी शैली सरल एवं मार्मिक है।

पु. ति. नरसिंहाचार्यजी भारतकी प्राचीन संस्कृतिके, गौरवसे अधिक प्रभावित हैं। ये हमारे सबसे बड़े सांस्कृतिक कवि हैं, भारतीय संस्कृतिके अन्तरंगके सौन्दर्यके चिरन्तन चित्रकार हैं। 'गणेशदशन', 'मान्दळिरु', 'हणते' आदिमें इनकी संगृहीत कविताएँ हमारे सामने दीपमालाकी भाँति जगमगाती हैं। इनपर

कालिदास तथा वर्ड्सवर्थकी अभिट छाप है। इन दोनोंका परिष्कृत मनोधर्म इनके काव्योंमें द्रष्टव्य है। संगीत एवं साहित्यका हृदयंगम संगम इनके काव्यकी विशेषता है। इनमें मानवीय हृदयकी उदात्त भावनाएँ रागिनी बनकर काव्य-रूपमें फूट पड़ती है। संस्कृतके पद पुञ्ज गंयता इनकी शैलीकी विशेषता है। पु. ति. नरसिंहाचार्य हमारे सर्वश्रेष्ठ गीत-नाटककार है। 'गोकुलनिर्गमन', 'अहलमें', 'हर्षवर्ष' इनके उल्लेखनीय गीत-नाटक हैं।

जी. पी. राजरत्न इस मण्डलीके एक और संस्मरणीय कवि हैं, कन्नड़के एक मात्र हालावादी कवि हैं। आपकी 'एण्डकुडुक रत्न' (पियक्कड़ रत्न) 'रत्नन पदगळु' की कविताएँ हिन्दी-कवि बच्चनजीकी हालावादी कविताओंकी भाँति बहुत ही लोकप्रिय हैं। मानव जीवनकी तृष्णाको साकार करनेमें आप सफल हुए हैं। 'रत्नन पदगळु' की कविताएँ दीन जनताके सामने असीम आशावादको लेकर आती हैं। संसारमें सत्य एवं प्रेममें, नीति और अन्यायमें जो संघर्ष है, उसका यथार्थ चित्रण सांकेतिक रूपसे इन कविताओंमें चित्रित है। इनका पियक्कड़ धर्मके नामपर होनेवाले कोटि-कोटि अत्याचारोंकी खिल्ली उड़ाता है, अपनी मदिराके दर्पणमें विकृत जगतकी प्रतिबिम्बित दिखाता है। इनकी शैली ग्राम्य भाषासे पूर्ण है, राजरत्नजीने अपने काव्यके लिए पियक्कड़की ही भाषा ली है, जिसकी नस नसमें, मस्ती है। 'पुरुष सरस्वती' इनकी विडम्बनात्मक (Parody) कविताओंका संकलन है, जिसमें शुष्क पाण्डित्यकी खिल्ली उड़ाई गई है। इसकी भाषा अंग्रेजी और कन्नड़की विलक्षण खिचड़ी है। बालोपयोगी कविताएँ भी इन्होंने लिखी हैं जिनमें 'कतूरि' 'कडलेपुरि' आदि मुख्य हैं। राजरत्नजीने आजकल कविता लिखना बन्द-सा कर दिया है। लगता है कि बौद्ध साहित्य, प्राचीन कन्नड़ साहित्य, आलोचना आदिके अध्ययनने इनके कविको समाप्त-सा कर डाला है।

श्री. के. एस. नरसिंहस्वामी मानवीय हृदयकी सुकुमार वृत्तियोंके अनन्य गायक हैं। 'मैसूरुमल्लिगे' (मैसूरुकी मल्लिका) ने उनको सर्वाधिक जन-प्रिय बनाया। इतना जनप्रिय संग्रह कर्नाटक भरमें और कोई भी नहीं है। प्रणय, विश्व मोहक प्रणयका मादन रूप लोकांगीतोंकी शैलीमें मार्मिक रूपसे इनकी कविताओंमें व्यक्त हुआ है। सरलता तथा सहजता इन कविताओंकी विशेषता है। विहारीके शृंगारिक दोहोंकी भाँति, संस्कृतके अमरकी प्रणय-कविताओंकी भाँति ये कविताएँ मानवकी रागात्मिका वृत्तिके अक्षय भण्डारको हमारे सामने खोलती हैं। स्त्रीका मातृ गृह-प्रेम, पतिका प्रणय कोप, प्रणय-कलह, मिलन-कौतूहल, विरहकातरता, प्रेमी-प्रेमिकाओंका प्रणय संलाप एवं उनकी अठखिलियों आदिकी चिर नूतन सुकुमार अभिव्यक्ति इनमें है। हार्थी दाँतपर उत्कीर्ण बेल-बूटोंकी भाँति भावोंके सूक्ष्म एवं चारु-चित्रणमें कवि अनुपमेय है। भाषा मल्लिका से भी कोमल, मधुर एवं मदिर है। 'ऐरावत', 'उंगुर' (अँगूठी) इनके अन्य श्रेष्ठ संकलन हैं। नरसिंहस्वामीजी

एक विकासशील कवि हैं। 'कलियागु बा कृष्ण' (वीर बने आ कृष्ण!) इनकी सुन्दर प्रगतिवादी कविता है। 'शिलालते' में इनकी उत्कृष्ट प्रयोगवादी कविताएँ हैं। प्रयोगवादी धाराके बहुत ही सकल तथा सशक्त कवियोंमें नरसिंह स्वामीजी भी एक हैं।

मैसूरकी पुरानी पीढ़ीके कवियोंमें डी. वी. गुण्डप्पार्जिका नाम उल्लेखनीय है। 'वसन्तकुसुमाञ्जली', 'अन्तः पुरगीतेगळु' 'मकुतिम्भन कग्ग' आदि उनके प्रतिनिधि सकलन हैं। डी. वी. गुण्डप्पार्जिने उमरखैयामकी रुवाइयोंका सफल अनुवाद किया है। दार्शनिकता तथा अव्यक्तीके प्रति एक गम्भीर कुतूहल इनकी कविताओंमें दर्शित है। काव्य तथा विद्वत्ताका अप्रतिम सगम डी. वी. गुण्डप्पार्जि में हुआ है। शैली संस्कृत शब्दबहुला तथा गम्भीर है। इनका 'मकुतिम्भन कग्ग' कन्नड़का सर्वश्रेष्ठ दार्शनिक काव्य-संग्रह है। यह नए युगकी नई गीता है।

दक्षिण कन्नड़की पुरानी पीढ़ीके कवियोंमें राष्ट्रकवि गोविन्द पैजीका नाम अन्यतम है। वे हमारे इस युगके सबसे पुराने कवि हैं। गौतम बुद्ध तथा ईसा-मसीहके अन्तिम समयको चित्रित करनेवाले उनके 'वैशाखी' तथा 'गोलगोथा' सुन्दर एवं सशक्त खण्ड-काव्य हैं। 'मी चुळिळ' आदि इनकी प्रकृति सम्बन्धी कविताएँ हैं। गोविन्द पैजीकी शैली गम्भीर है, भाव गम्भीर है। इनके काव्य प्राचीन तथा अर्वाचीन काव्यके सेतुका काम करते हैं। कडंगोड्लु शंकर भट्ट दक्षिण कर्नाटक जिलेके एक और उल्लेखनीय कवि हैं। 'होन्निय मदुवे' (होन्नीका विवाह) इनका एक सुन्दर खण्ड-काव्य है। 'माद्री' के सहगमनपर लिखा इनके 'माद्रिम चिने' में महाकाव्यकी शक्ति भरी है, उसके जीवनका मार्मिक चित्रण, उसका पति प्रेम अत्यन्त प्राञ्जल भाषामे अभिव्यक्त है। 'नलमे' इनकी सुन्दर छायावादी गीतोंका संग्रह है।

सालि रामचन्द्रराव भी पुरानी पीढ़ीके कवि हैं जो किसी मण्डली विशेषसे सम्बन्धित नहीं हैं। इनके 'तिलाञ्जलि', 'अभिसार' आदि कथा-काव्योंमें जीवनके मार्मिक चित्र हैं। रवीन्द्रनाथजीका प्रभाव इनपर पड़ा है। 'चित्रमृष्टि' इनकी गीतिकाओंका सकलन है। देश-प्रेम एवं कृष्णसे इनकी कविता आर्द्र है।

कन्नड़के 'नव्य-काव्य'—प्रयोगवादका जन्म इटलीके एक नृत्य मन्दिरमे हुआ। स्व. पेजावर सदाशिवरावजीके 'ला: रेञ्जो: इल् मन्निफिका' नामक नाट्यगीत (जिसकी रचना इटलीके नाट्य मन्दिरमें हुई) तथा 'वरुण' नामक कविता संग्रहसे प्रयोगवादका आरम्भ होता है। जास नृत्यके अनुकूल लिखी गई इस कवितामें मनके अन्तरालमे सुप्त कामनाओं तथा प्रवृत्तियोंका वास्तविक चित्रण है। 'वरुण' कवितामे भी गुप्त वेदनाका चित्र प्रयोगवादी शैलीमें चित्रित है। इटलीकी वर्षा, अजगरकी भाँति पड़े रहनेवाले रास्ते आदिके चित्र नव्य काव्यके प्राण हैं। पेजावर सदाशिवरावकी अकाल मृत्युसे कन्नड़ साहित्यकी अपार क्षति हुई है।

‘नव्यकाव्य’ ( प्रयोगवाद ) का ऐतिहासिक रूपमें आरम्भ करनेका श्रेय प्रो. वी. के. गोकाकजीको मिलना चाहिए। इन्होंने १९५० ईसवीमें ‘नव्य कवितेगळु’ (प्रयोगवादी कविताएँ) नामक एक कविता-संकलन प्रकाशित किया। इसमें पहली बार ‘रेडियो,’ ‘क्लोरोफार्म’ आदि नवीन वस्तुओंपर कविताएँ लिखी गई। भाषा तथा छन्दका पूर्ण स्वातन्त्र्य, यथार्थ दृष्टिकोण, सम्मूर्तनों (Imageries) की योजना, नवीन तन्त्र, सामयिक जीवन प्रज्ञा इनकी कविताओंकी विशेषताएँ हैं। इनके ‘द्यावापृथ्वी’ संकलनमें भी नवीन तन्त्रका सफल प्रयोग है।

श्री गोपालकृष्ण अडिग प्रयोगवादके धुरन्धर कवि हैं। श्री बन्द्रे तथा कुवेम्पुर्जीके प्रभावमें न आनेवाले आप एक मात्र तरुण कवि हैं। हम इनको प्रयोगवादका प्रतिनिधि कवि कह सकते हैं। ‘भाव तरंग’ इनकी छायावादी कविताओंका संकलन है। तरुण कवियोंमें अडिगजी अत्यन्त शक्तिशाली कवि हैं। ‘चण्डुमदळे’ इनकी श्रेष्ठ प्रयोगवादी कविताओंका संकलन है। इनकी कल्पना बहुत ही सर्जीव किन्तु अस्वस्थ है। वे एक-एक करके अपने पुराने बानेको निकाल फेकते जा रहे हैं। अडिगजी आरम्भसे ही प्रयोगशील रहे हैं। ‘नडेंदु बन्द दारि’ में (जिस पथपर हम आए) में काव्यमें प्राचीनताके प्रति विद्रोहके स्वर गूँजते हैं! इन कविताओंमें राजकीय जीवनकी अर्थ शून्यता, आदर्शकी विफलता आदिसे खीझ उठे मनके चित्र हैं। ‘नडेंदु बन्द दारि’ (जिस पथपर आए) ‘गांधी’ आदि कविताओंमें यही भाव है। ‘चेण्डुमदळे’ ने तो कन्नड़ काव्यमें नवीनता दुदुम्भी बजा दी। इसमें संगृहीत ‘हिमगिरिय कन्दर’ ‘गोंदल पुर’ (गडबड़ नगरी) ‘दीपावली,’ ‘एनादरु माडुतिरु तम्म’ ( कुछ करते रहो भाई ! ) आदि कविताओंने हलचल मचा दी। खिचड़ी भाषा, सम्मूर्तन, विपमलय आदिसे भरपूर इन कविताओंमें जीवनका वीभत्स, विकृति, खोखलापन, कुण्ठा आदि चित्रित हैं। ‘हिमगिरिय कन्दर’ ‘गोंदलपुर’ आदि कविताओंमें इन्होंने यह चित्रित करनेका प्रयत्न किया है कि यदि आदर्श जीवनका श्वास न बनकर स्वप्न मात्र रह जाएगा तो उससे बड़ी अस्वस्थता दूसरी नहीं है। हालमें प्रकाशित ‘भूमि गीत’ में भूमिका रुद्र-रमणीय सौन्दर्य, मनुष्य तथा धरतीका अविच्छेद सम्बन्ध, जन्म-मृत्युके वात्या चक्रमें होनेवाला सृष्टि कार्य इन सबकी शक्तिपूर्ण संकेतों द्वारा अभिव्यक्ति हुई है। ‘भूमि गीत’ कन्नड़की सर्वश्रेष्ठ कविताओंमेंसे एक है। अडिगजी मानवके अन्तरंग विप्लवके सफल चित्रकार हैं। शैलीमें तो अडिगजी अद्वितीय हैं, इनके प्रत्येक शब्दके हृदय स्पन्दन, धड़कनको भी हम सुन सकते हैं। सन् १९६१ के गणराज्योत्सव पर लिखित इनकी ‘नेहरू निवृत्तारगुवुदिल्ल’ (नेहरूजी निवृत्त नहीं होंगे) इस कविताने तो खलबली मचा दी। सितम्बर १९६१ में ही गोपालकृष्ण अडिगजीने अज्ञयजीके ‘प्रतीक’ की भाँति ‘सार्क्षी’

नामक एक साहित्यिक पत्रिका निकाली है जो प्रयोगवादकी मुख पत्रिका कही जा सकती है।

हाल ही में 'तार सप्तक' की भाँति 'नव्य ध्वनि' नामक एक कविता संकलन प्रकाशित हुआ है, जिसमें गोकाक, रामचन्द्र शर्मा, क. वें. राजगोपाल आदि पीढ़ीके कवियोंकी प्रयोगवादी कविताएँ हैं। प्रयोगवादी कवियोंमें श्री गोपालकृष्ण अडिगके पश्चात् श्री रामचन्द्र शर्माजीका नाम उल्लेखनीय है। 'एल्लु सुत्तनकांटे' 'केण्डकडलु' आदि उनकी विख्यात कविताएँ हैं, जिनमें पूर्ण रूपसे नये तन्त्रका सफल प्रयोग है। इनमें काम जीवनकी विकृतियाँ अनेकों संकेतों तथा प्रतिमाओंके द्वारा अभिव्यक्त हुई हैं।

श्री के. एस. नरसिहस्वामीजी, जी. एस. शिवरुद्रप्पा, एम. अकबर अली शं. रा. मोकाशि, तथा चेन्नवीर कणवि इस धाराके उल्लेखनीय कवि हैं। अकबर-अलीके काव्यमें विडम्बन तथा विदग्धता है। मोकाशीजीके काव्यमें विचार तथा कल्पनाओंका समन्वय है। सन् १९२६ ईसवीमें बी. एम. श्रीकण्ठय्याजी द्वारा आधुनिक कविताका जो बीजारोपण हुआ, वह अंकुरित तथा पल्लवित हो एक विशाल वृक्ष बनकर फूला-फला है। कन्नड़के आधुनिक कवि वर्तमान जीवनकी विभिन्न समस्याओं तथा अणु युगका प्रगतिके प्रति सजग है। सत्य एवं सौन्दर्यकी अभिव्यक्तियोंमें उसकी नव नवोन्मेषशालिनी प्रतिभाको न केवल सफल होना है, वरन् जीवनके शतदलमें मानवताकी प्राण प्रतिष्ठा भी करनी है। मनु कुलकी मगल यात्रामें उसके काव्यको अमृतका पाथेय बनना है। कहनेकी आवश्यकता नहीं कि कन्नड़के कवि इस ओर अग्रसर हैं।

## नाटक :

प्राचीन कन्नड़में नाटकोंका नितान्त अभाव आज भी एक पहेली है। वैसे तो कर्नाटककी जनता नाटकोंसे खूब परिचित थी। पम्प, रन्न आदि जैन कवियोंकी रचनाओंमें नाटकीयता गोचर होती है। रन्नके 'गदायुद्ध' में तो इतनी नाटकीयता है कि स्व. बी. एम. श्रीकण्ठय्याजीने कुछ ही पंक्तियोंको निकालकर उसे नाटकके रूपमें परिवर्तित किया है। श्री गोविन्द पैर्जाने अनुमान लगाया है कि कन्नड़के प्रसिद्ध वैयाकरण केशिराजने (१२६० ई.) 'सुभद्राहरण' तथा 'प्रबोध चन्द्र' नामक नाटक लिखे थे। जो भी हो, प्राचीन कन्नड़में नाटकोंका अभाव चिन्त्य है। किन्तु कन्नड़के लोक नाटक 'यक्षगान' शुद्ध द्राविड़ शैलीका अपना नाटक है। यक्षगान, 'बयलट' 'दोम्बिदासर कुणित' आदि लोक नाटकोंकी एक उज्वल परम्परा कन्नड़में है जिसका प्रभाव अन्य भाषाओंपर भी पड़ा है। विद्वानोंका कथन है कि मराठी नाटकोंका जन्म सांगलीमें प्रदर्शित एक यक्षगानको देखकर हुआ।

उपलब्ध नाटकोंमें मैसूर नरेश चिक्कदेवराज ओडेयरका दरबारी कवि सिंगरार्य (१६८०ई.) प्रणीत 'मित्रविन्दा गोविन्द' हीं कन्नड़का प्रथम नाटक है, जो श्रीहर्षकी 'रत्नावली' के आधारपर लिखा गया है। इसके पश्चात् मैसूर नरेश चामराज ओडेयरके प्रोत्साहनके कारण पारसी कम्पनियोंकी देखा-देखी महाराजा कम्पनीकी स्थापना हुई। संस्कृतके नाटकोंका धड़ाधड़ अनुवाद होने लगा। भास, कालिदास, श्रीहर्ष, भवभूति आदिके सभी नाटक कन्नड़में आए। इन अनुवादोंमें पुरानी लीक हीं पीटी जा रही थी। नूतनता किसीने सोची ही नहीं। इन अनुवादकोंमें सबसे प्रतिभावान लेखक है अभिनव कालिदास बसवप्प-शास्त्रीजी (१८६१ई.)। इनका 'कन्नड़ शाकुन्तल' अपनी मार्मिक शैलीके कारण आज भी प्रसिद्ध है। बसवप्पशास्त्रीजीपर पाश्चात्य नाटकोंका प्रभाव भी पड़ा। उन्होंने महाकवि शेक्सपियरके 'ओथेलो' का कन्नड़में रूपान्तर प्रस्तुत किया। इन अनूदित नाटकोंका प्रचार कर जनतामें नाटकोंको देखनेकी अभिरुचि उत्पन्न करनेका श्रेय स्व. नटसार्वभौम श्री ए. वी. वरदाचार्यको है; किन्तु इन नाटकोंमें तन्त्र और भाषा-किसीमें भी नवीनता नहीं थी। वही पुराने ढर्रेकी भाषा, पद्योंकी भरमार, अलंकृत रंग प्रसाधन, वेश-भूषाओंकी प्रधानता थी। 'गुले बकावली', 'सदारमे' आदि पारसी ढंगके नाटकोंने नाटकोंको तो जनप्रिय बनाया; किन्तु उनमें सुरुचिका अभाव है।

उत्तर कर्नाटकमें गरुड़ सदाशिवरावने 'पादुका पट्टाभिषेक', 'चौति चन्द्रमा' आदि सुरुचिपूर्ण नाटक लिखकर नाटकके प्रति जनतामें रुचि पैदा की। इसके बाद उन्होंने कुछ समस्यात्मक नाटक भी लिखे; जिनमें 'विषम विवाह' मुख्य है। 'एच्चमनायक' उनका विख्यात ऐतिहासिक नाटक है।

चल चित्रोंके प्रचलनका प्रभाव नाटकोंके अभिनयपर पड़ा। अतः नाटक कम्पनियाँ धीरे-धीरे समाप्त होने लगीं। 'यक्षगान' 'ताळ मड्डळे' 'दोम्बिदासर कुणित', 'बयलाट' आदि लोकनाटक आज भी सर्जीव है; परन्तु नाटकोंकी प्रगति एवं विकास आजकल कला विलासियोंके हाथमें है।

स्व. बी. एम. श्रीकण्ठैयाजीने ग्रीक दुखान्त नाटकोंके आदर्शपर 'अश्वत्थामन्' 'पारसीकरु', 'गदायुद्ध' आदि नाटकोंके प्रणयनके द्वारा कन्नड़ रंगभूमिको नूतन मार्ग दिखाया। कन्नड़में सामाजिक नाटकों द्वारा वैचारिक क्रान्ति करनेवाले महान् नाटककारोंमें स्व. टी. पी. कैलासम्का नाम अन्यतम है। यही कार्य उत्तर कर्नाटकमें श्रीरंगजीने किया। कैलासम् तथा श्रीरंग मैसूर तथा उत्तर कर्नाटकके प्रतिनिधि नाटककार हैं। दोनों अनेक वर्षों तक विलायतमें रहे एवं वहाँकी नाटक परम्परासे प्रभावित हुए। इब्सन, शा, शेरिडीन, मेटर्लिक आदि विख्यात नाटककारोंसे इनको प्रेरणा मिली।

कैलासम् कन्नड़की नाट्य प्रतिभाके कैलाश पर्वत हैं। भारतके महान् नाटककारोंकी विरल पंक्तिमें इस युग-प्रवर्तक नाटककारका भी एक महत्वपूर्ण स्थान है। अपने वैयक्तिक जीवनकी करुणाके कारण इनके नाटकोंमें सर्वत्र मानवताकी अमल मन्दाकिनीके दर्शन होते हैं। इनके नाटकोंमें आदर्शोन्मुख यथार्थवादी दर्शन अभिव्यक्त है। कन्नडमें सच्चे अर्थमें समस्या नाटकोंका सूत्रपात करनेका श्रेय इन्हींको है। कैलासम्ने करीब साठसे भी अधिक नाटक लिखकर अपना अतूठा स्थान बनाया है। 'हों रूल' 'टोळु गट्टी' 'नं ब्राह्मणिके', 'वैद्यन व्याधि' मूळे (वेश्या) 'पोली किट्टी' आदि नाटकोंके द्वारा इन्होंने समाजके अर्थहीन आचार, अन्ध श्रद्धा, रूढ़ि, अर्थहीन शिक्षा प्रणाली, सांस्कृतिक दिवालियेपन, खोखली सभ्यता आदिपर कशाघात किया है। इव्सन, शाँ, आदि नाटककारोंकी भाँति हास्य, व्यंग्य, विडम्बन हीं इनके अस्त्र थे। इन नाटकोंके द्वारा पहली बार प्रेक्षकोंको राम, सीता, चन्द्रमती, आदि पौराणिक चरित्रोंको छोड़कर अपने ही बीचके व्यक्ति कप्पण, किट्टी, पातु, नागत्ते, रंगण आदि सजीव व्यक्तियोंको देखनेका मौका मिला। इन्होंने स्त्रैण पति, पाखण्डी, ढोंगी ब्राह्मण आदिको हमारे ही समाजसे उठा-उठाकर रंगमञ्चपर ला खड़ा किया। अवास्तव जीवन व्यतीत करनेवाले वास्तविक व्यक्तियोंको पकड़-पकड़कर उन्हींके द्वारा हमारे समाजकी पोल खुलवाई। कैलासम्की भाषा अँग्रेजी तथा कन्नड़की विलक्षण खिचड़ी है। उनके नाटक एक विशेष संस्कारकी माँग करते हैं। कैलासम् स्वयं एक जन्मजात एवं अभिजात नट थे। वे स्वयं अपने नाटकोंमें भाग लेते थे। कैलासम्के पश्चात् आज भी उनकी जगह खाली है।

कैलासम्जीने अँग्रेजीमें भी नाटक लिखे हैं, जिनमेंसे 'Purpose', 'Fulfilment', 'Karuna' आदि मुख्य हैं।

कैलासम्के पश्चात् हमारे सर्वश्रेष्ठ नाटककार श्रीरंगजी हैं। 'हरि जन्वार', 'ससारिग कंस', 'वैद्यराज', 'दरिद्रनारायण', 'सम्पुष्टरामायण', 'निरुत्तर कुमार', 'सन्ध्याकाल', 'शोकचक्र' आदि नाटकोंके द्वारा श्रीरंगजीने हमारी सामाजिक विकृतियोंका उद्घाटन किया, हमारी कुण्ठाओं, कुरूपताओंपर कुठाराघात किया। कैलासम्जीकी भाँति व्यंग्य-विडम्बन हीं इनके अस्त्र हैं। 'केळु जनमेजय', 'शोकचक्र', 'जीवन जोकाली' आदि इनके विख्यात नाटक हैं। श्रीरंगजीके नाटकोंकी रोचकता उसके सम्वादोंमें है, किन्तु कथा सम्विधान और चरित्र-चित्रणकी ओर अधिक ध्यान न देनेके कारण वे केवल बौद्धिक हों जाते हैं। उनमें मानवताका राग लेपन नहीं है, अतः हार्दिकता भी कम हीं मिलती है। केवल कथोपकथन ही किसी नाटककी जान नहीं है। 'अहल्या', 'निरुत्तर कुमार', 'अश्वमञ्च', 'यमनसोलु' आदि नाटकोंमें प्राचीन पात्रोंके द्वारा आधुनिक सत्यकी मीमांसा की गई है।

कन्नडके विख्यात कवियोंने भी नाटकोंकी श्रीवृद्धिमें हाथ बँटाया है। श्री गोविन्द पैर्जने एकलव्यपर 'हेब्बेरळु' नामक एक सुन्दर नाटक लिखा है। महाकवि कुवेम्पुर्जी हमारे रोमाण्टिक नाटककार है। इन्होंने शंक्सपियरके 'टम्पेस्ट' तथा "हैमलेट" का सुन्दर रूपान्तर किया है। इनका 'जलगार' एक भावात्मक नाटक है। 'महारात्री' भगवान बुद्धके महाभिनिष्क्रमणके भाूमिक प्रसंगका चित्रण करनेवाला रम्य नाटक है। 'यमनसोलु' 'सरळ रगळ' ( Blank verse ) में लिखा उनका पहला नाटक है। 'शमशान कुरुक्षेत्र', 'बेरळंग कोरळ', 'शूद्र तपस्वी', 'वाल्मीकिय भाष्य' आदि इनके अन्य उल्लेखनीय नाटक है। कुवेम्पुर्जी प्रधानतः कवि है। अतः इनके नाटकोंमें भी काव्यमय वातावरण, भावुक पात्र, काव्यमय भाषाके दर्शन होते हैं। ये सब नाटक 'सरळरगळ' में लिखे गए हैं।

भास्तीर्जने 'उपा', 'शान्ता', 'सावित्री', 'ताळीकोटे' आदि नाटक लिखे हैं। 'तिरुपानी' इनका सुन्दर भावात्मक नाटक है। इनकी 'यशोधर' गुप्तर्जाकी यशोधरकी भाँति विरहविधुरा भाँतिनी यशोधरकी जीवन-गाथाको चित्रित करनेवाला भाूमिक नाटक है। भास्तीर्जी हमारे सांस्कृतिक नाटककार हैं। इनके नाटकोंकी भाषा अत्यन्त सरल, वातावरण बहुत ही सहज, एवं पात्र अत्यन्त मानवीय रहते हैं।

स्व. एम. आर. श्रीनिवास मूर्तिर्जाका 'नागरिक' भी मुक्तछन्दमें लिखा एक सुन्दर नाटक है, जिसमें कर्नाटक सांस्कृतिक जागरणकी चेष्टा की गई है। डॉ. डी. वी. गुण्डप्पाजीका 'विद्यारण्य' भी इसी ढंगका एक नाटक है। डॉ. डी. वी. गुण्डप्पा तथा एम. आर. श्रीनिवासमूर्ति हमारे पुनरुत्थानवादी नाटककार हैं।

महाकवि बेन्द्रेर्जाके 'नगेय होगे', 'उद्धार', 'होस संसार' ये तीन नाटक कलाकी दृष्टिसे उत्कृष्ट हैं। इन्होंने अपने नाटकोंमें सामाजिक दोषोंका उद्घाटन करनेके साथ-साथ मानवीय मूल्योंकी प्रतिष्ठा की है। 'उद्धार' उनका समस्यामूलक नाटक है। 'हुच्चाटगळु' इनका प्रहसन है। सम्वादोंमें विदग्धता है।

प्रो. गोंकाकर्जाका 'जन नायक' एक दुखान्त नाटक है। 'युगान्तर' एक सुखान्त नाटक है। 'विमर्शक वैद्य' इनका व्यंग्य नाटक है। इनके नाटकोंपर इब्सन आदि नाटककारोंका गहरा प्रभाव पड़ा है। समस्याओंका भाूमिक विवेचन इनकी विशेषता है।

इसी समय कन्नडमें इब्सन, शॉ आदिके नाटकोंका काफी अनुवाद भी हुआ। इनमें स्व. एस. जी. शास्त्रीने 'डॉलस हाउस' ( Doll's House ) का 'सूत्रद गोम्ब' नामसे सुन्दर अनुवाद प्रस्तुत किया। 'आर्यक' इनकी एक और अनूदित कृति है। 'सौंक्रटीज न कोनेय दिन गळु' हाउसमनकी कृतिका सफल अनुवाद है। प्रो. ए. एन. मूर्तिरावने मोलियरके दो नाटकोंका अनुवाद किया है।

उनकी अनूदित कृति 'आषाढ भूति' बहुत ही जनप्रिय है। मूर्तिरावकी शैली बहुत ही ललित है।

ऐतिहासिक नाटककारोंमें स्व. संसजीका नाम स्मरणीय है। मैसूर-राज-परिवारके इतिहासको लेकर उन्होंने करीब तेईस नाटकोंकी रचना की, जिनमें 'बेट्टदरसु', 'विगड विक्रमराय', 'बिसदेंतेंबर गण्ड', 'सुगुण गम्भीर', आदि मुख्य हैं। ओजमयी शैली, क्रियात्मक पात्र, संसजीके नाटकोंकी विशेषताएँ हैं। संसजी हमारे सर्वाधिक शक्तिशाली नाटककार थे। प्रो. मुगुळीजीके अनुसार— "उनकी शैलीमें शंक्सपियरकी शैलीका ओज है, शक्ति है। पात्रोंके द्वन्द्व तथा घटनाओंके घात-प्रतिघातोंमें संसजीने अद्भुत शक्ति दिखाई है।"

पौराणिक तथा सांस्कृतिक नाटककारोंमें श्री सी. के. वेंकटरामैयाजीका नाम अग्रगण्य है। इनके 'मण्डोदरी', 'ब्रह्मवादिनी', 'नचिकेत' आदि नाटकोंमें भारतीय संस्कृतिके उज्ज्वल चित्र मिलते हैं। सम्वादोंकी दीर्घता इनका एक दोष है, किन्तु चरित्र-चित्रणमें इनको बहुत सफलता मिली है।

श्री शिवरामकारन्त हमारे एक और व्यंग्य नाटककार हैं। इनका 'गर्भगुडि' देवालयोंके पुजारी, पुरोहित, मठके महन्तोंका भण्डा फोड़ता है। कारन्तजीके विडम्बनमें अद्भुत शक्ति है। सामाजिक कुरूपताओं व कुण्ठाओंपर निर्मम प्रहार करनेमें इनकी शैली अत्यन्त सफल हुई है। 'किसा गौतमी', 'मुक्त हार' सुन्दर गीति नाटक हैं। 'सोभिन्न भाग्य' इनका अतीव मार्मिक दुखान्त नाटक है। 'यारो अन्दरू' (किसीने कहा) इनका छाया नाटक है।

उपन्यासकार अ. न. कृष्णरावने भी अनेक सामाजिक तथा सांस्कृतिक नाटक लिखे हैं। 'मदुवेयी मनेहाळो' विवाहकी समस्याओंका यथार्थ निरूपण करनेवाला एक यथार्थवादी नाटक है। 'हिरण्यकश्यपु', 'स्वर्गमूर्ति' आदि नाटकोंमें पौराणिक पात्रोंको नए दृष्टिकोणसे देखनेका सफल प्रयत्न है।

श्री पु. ति. नरसिंहाचार्य हमारे सर्वश्रेष्ठ गीति नाटककार हैं। 'गोकुल-निर्गमन' उनका अत्यन्त मनोहर रोमाण्टिक ऑपेरा है। 'अहलमे', 'शारद-याभिनी', 'हर्ष वर्ष', 'दसन्त चन्दन' आदि इनके श्रेष्ठ गीति नाटक हैं। वातावरणकी सृष्टि तथा पात्र-निरूपणमें इनको अद्भुत सफलता मिली है। संगीत एवं साहित्यका मञ्जुल सामञ्जस्य इन नाटकोंकी विशेषता है।

वी. सीतारामय्याजीके 'आग्रह', 'सोद्विस्व मत्तु रस्तुम', जी. पी. राजरात्रं-जीके 'गण्डुगोडली' इसी समयके उल्लेखनीय नाटक हैं। डॉ. मुगुळीजीके 'नाम-धारी' तथा 'धनञ्जय' श्रेष्ठ सामाजिक तथा चिन्तनात्मक नाटक हैं।

एकांकी तथा रेडियो नाटक आजकल बहुत ही जनप्रिय बन रहे हैं। अकेले श्रीरंगजीने ही पचाससे अधिक एकांकियोंकी रचना की है। ब्रे-द्रेजीका 'जात्रे', श्रीरंगजीका 'यमनसोलु', एन. के. कुलकर्णीका 'बार रूम' आदि श्रेष्ठ

एकांकी नाटक है। नई पीढ़ीके नाटककारोंमें सर्वश्री रामचन्द्र शर्मा\*, ए.के.रामानुजम्, के. वी. सुब्बण्ण, कीर्तिनाथ कुर्तुकोटे, बळ्ळारीवीलि आदिके नाम उल्लेखनीय हैं। रेडियो नाटककारोंमें डॉ. एच. के. रंगनाथ, कस्तूरि, बी.चि आदि मुख्य हैं।

आधुनिक नाटकोंमें चेतन (Conscious), अद्वैतचेतन (Unconscious), अचेतन (Subconscious) मनके इन तीन परदोंके पीछे निहित भाव-विकारोंके चित्रण पर जोर दिया जा रहा है। उपर्युक्त नाटककारोंके अलावा केवल मनोरञ्जनार्थ सैकड़ों प्रहसन लिखे जा रहे हैं। इन लेखकोंमें सर्वश्रीः पर्वतवाणी, क्षीरसागर, गुण्डण्ण आदिके नाम उल्लेखनीय हैं। किन्तु इन कृतियोंमें जीवनके गम्भीर पक्षका अभाव है। केवल मनोरञ्जन ही नाटकोंकी प्राण चेतना नहीं है।

### उपन्यास :

उन्नीसवीं शताब्दीके प्रथम चरणमें ही कन्नड़में 'मुद्रा मञ्जूषा' नामक उपन्यास प्रकाशित हुआ। किन्तु इसमें उपन्यासकी सभी कलाओंका पूर्ण समावेश नहीं है। कन्नड़में उपन्यास साहित्यका आरम्भ बंगला तथा मराठी उपन्यासोंके अनुवादोंके द्वारा हुआ। श्री बी. वेंकटाचार्यजीने बाबू बंकिमचन्द्रके सभी उपन्यासोंका सफल अनुवाद प्रस्तुत किया। उधर उत्तर कर्नाटकमें श्री गळगनाथजीने हरिनारायण आपटेजीके मराठी उपन्यासोंको कन्नड़में लानेका सफल प्रयत्न किया।

कन्नड़के प्रथम मौलिक उपन्यासकार हैं मैसूरके श्री एम. एस. पुट्टण्णाजी। उनका (१९१५ ई.) 'माडिदुण्णो महाराय' (जैसी करनी, वैसी भरनी) कन्नड़का प्रथम मौलिक उपन्यास है। इस उपन्यासमें तत्कालीन मैसूरका जन-जीवन, राज दरबार, जनतापर ढोंगी साधुओंका अत्याचार, मैसूर नरेशका प्रजा-प्रेम, कला-प्रेम आदिका यथार्थ तथा मार्मिक चित्रण है। इसकी भाषा बहुत ही चर्लता तथा मुहावरेदार है।

इसी समय उत्तर कर्नाटकमें भी केरूर वासुदेवाचार्यजीने मौलिक उपन्यासोंकी रचना की। किन्तु उनमें ए. एस. पुट्टण्णाजीकी-सी वास्तविकता नहीं है। केरूर वासुदेवाचार्यजीका 'भ्रातृघातकनै औरंगजेब' ने आगामी ऐतिहासिक उपन्यासोंका पथ प्रशस्त किया। 'इन्दिरा' इनका एक समाजिक उपन्यास है।

उपन्यास वास्तविक अर्थमें समाजका दर्पण है। अतः वह शीघ्र ही जनप्रिय बन जाता है। श्री वीरकेशरी सीताराम शास्त्रीजीका 'दौलत' श्री देवडुर्जाके 'महा ब्राह्मण', 'अन्तरंग' तथा 'भयूर', बेटगरी कृष्ण शर्माजीका 'अशन्तिपर्व' आदि इस समर्थके संस्मरणीय उपन्यास हैं।

---

\* आप 'सेरगिन केन्द्र' (अञ्चलकी आग) को राष्ट्रीय नाटक-प्रतियोगितामें प्रथम पुरस्कार मिला चुका है।

उपन्यासको सर्वाधिक जनप्रिय बनानेका श्रेय श्री अ. न. कृष्णराव तथा शिवराम कारन्तजीको मिलता है। अ. न. कृष्णरावजीने अपने उपन्यासोंके द्वारा जितने पाठकोंकी सृष्टि की, उतनी कदाचित ही किसीने की होगी। अकेले उन्होंने पचहत्तरसे अधिक उपन्यास लिखे हैं। जीवनका ऐसा कोई भी पक्ष नहीं है जिसका स्पर्श इन्होंने न किया हो। इनके 'सन्ध्याराग' 'उदयराग', 'कर्णाः' (आँसू), 'अरुळु रःरळु' 'नटसर्वभौम', 'साहित्य रत्न', 'मंगल सूत्र' आदि उपन्यासोंमें सत्य तथा सौन्दर्यके संघर्षका यथार्थ चित्रण मिलता है। घरेलू वातावरणके चित्रणमें अ. न. कृष्णरावजी अद्वितीय हैं। इनके हालके उपन्यासोंमें कामिनी और कादम्बिका यथेष्ट चित्रण किया गया है। फ्रायडके मनोविश्लेषण, सन्ध्याका सन्ध्या कोलाहल ही इधर अधिक चित्रित हैं। फ्रायडने एक प्रकारसे अ. न. कृष्णरावके कलाकारपर आक्रमण कर दिया है। किन्तु इनकी भाँति और किसीने भी उपन्यासोंको विचारोंका इतना सफल माध्यम नहीं बनाया। इनके उपन्यासोंमें वातावरणकी सजीवता है, इनके पात्र वास्तविक जीवनसे लिए गए हैं। कर्मी-कर्मी ये वास्तविकताकी सीमातक पहुँचते हैं। गहराईका अभाव इन उपन्यासोंमें खटकनेवाली चीज है। इनकी एक महत्वपूर्ण विशेषता है इनकी सम्वादशैली। अकेले सम्वादोंमें ही एक समय, उपन्यासको ले चलनेकी अद्भुत क्षमता इनमें है। इस बातमें भारतभरमें उनकी टक्करके बहुत ही कम कलाकार मिलेंगे। इनकी भाषामें अद्भुत गति है, मार्मिकता है, रोचकता है।

अ. न. कृष्णरावजीने कुछ ऐतिहासिक उपन्यास भी लिखे हैं जिनमें 'कित्तूर रानी चेंन्ममा' 'विजय विद्यारण्य', 'तपोबल' आदि मुख्य हैं।

श्री शिवराम कारन्त हमारे यथार्थवादी गम्भीर उपन्यासकार हैं। आपने तीससे अधिक उपन्यास लिखे हैं। जीवनकी समस्याओंकी गम्भीर विवेचना तथा भावोंकी प्राञ्जल अभिव्यक्ति आपकी विशेषता है। 'मरळिमणिगं'\* (फिर धरतीकी ओर) आपकी सर्वश्रेष्ठ कृति है और कन्नड़का गौरव-ग्रन्थ है। 'वेट्टद-जीव' 'कुड़ियर कूसु' आपके सुन्दर आञ्चलिक उपन्यास हैं, जिनमें प्रकृति तथा मानवके संघर्षकी यथार्थ अभिव्यक्ति है। 'तुत्तिनचील' (कौरकी थैली), 'मुगिद युद्ध' आदि उपन्यासोंमें अन्न-समस्याका वास्तविक चित्रण है। 'चोमनदुडी' में छायाछूतकी समस्याकी यथार्थ व्यञ्जना है। 'कन्याबलि' में वेश्या-समस्याका चित्रण है। 'मोगयडे मन' में कलाकारके जीवनकी समस्याओका सुन्दर चित्रण है। 'गोण्डारण्य' में राजकीय चुनावका कटु चित्रण है। कारन्तजीकी एक विशेषता है उनका स्थानीय चित्रण (Local colour)। 'मरळिमणिगं' में दक्षिण

\* 'मरळिमन्निगं' का हिन्दी-अनुवाद—'धरतीकी ओर' को राष्ट्रभाषा चार समिति, बधनि सन् १९५५ में प्रकाशित किया है।

कन्नड़ जिलेके समुद्र तीर-प्रदेशका जीवन-चित्रण अत्यन्त सुन्दर बन पड़ा है। प्रकृति एवं मानवके निरन्तर संघर्ष इनके उपन्यासोंमें द्रष्टव्य है। कारन्तजी किसी वाद विशेषके झमेलेमें पड़नेवाले नहीं है। अतः फायड तथा मार्क्सके चंगुलमें पड़कर उनका कलाकार कभी पथभ्रष्ट नहीं हुआ है। जीवनको उन्होंने एक चिन्तनशील, सम्वेदनशील व्यक्तिकी दृष्टिसे देखा है। वे सच्चे अर्थमें मानवतावादी लेखक है। जीवनके प्रति उनकी निष्ठा अत्यन्त श्लाघनीय है। अतः उनके सभी चरित्र सजीव है। कारन्तजीकी शैली स्वच्छ एव सरल है; किन्तु उनको सम्वादोंमें उतना यश नहीं मिला है। कारन्तजीकी कृतियोंको पढ़ते समय हमे थामस हार्डीकी बरबस याद आती है। वे हमारे उपन्यास-सम्राट् हैं। श्री त. रा. सुब्बाराव हमारे श्रेष्ठ ऐतिहासिक उपन्यासकार हैं। 'कम्बनिय कुमिलु' (आंसूकी फसल) 'रक्त रात्रि', 'तिरुगुबाण', 'हसगिते' (बसन्त बहार) 'राष्ट्रकूटर नृपत्तुंग', 'कीर्तिनारायण' आदि इनके उपन्यासोंमें एक युगान्तर ही उपस्थित किया। इन्होंने कुछ मार्क्सवादी उपन्यास लिखे हैं, जिनमें 'बेकिय बेले', 'पुरुषावतार' आदि मुख्य हैं। 'पुरुषावतार' झूठे पत्तल चाटनेवाले भिखारियोंके दारुण जीवनका चित्रण करने-वाला अन्यन्त शक्तिशाली उपन्यास है। 'मंसवद हू' (श्मशान कुसुम) में वेश्या समस्याकी यथार्थ मीमांसा है। 'रक्ततर्पण' स्वराज्य आन्दोलनका चित्रण करने-वाला सुन्दर उपन्यास है। इनकी भाषा-शैलीमें अद्भुत रोचकता है। इनकी भाषा गिरि निन्नरिणीकी भांति उछलती-कूदती, इठलती चलती है।

डॉ. मास्ती वेकटेश अय्यंगारजीने 'चेन्न बसव नायक' तथा 'चिक्कवीर राजेन्द्र, नामक दो ऐतिहासिक उपन्यास लिखे हैं। 'सुब्बणा' एक कलाकारके जीवनका चित्रण करनेवाला बहुत ही भावुक उपन्यास है। सुब्बणा वास्तवमें कन्नड़का एक गौरव ग्रन्थ है। सरलतम भाषा, मार्मिक चरित्र मास्तीजीकी विशेषता है।

श्री. के. वी. अय्यर एक अनुभूतिपूर्ण लेखक है। 'शान्तला' होयसल सम्राज्ञी, कलाकी अधिष्ठात्री शान्तलाके जीवनपर लिखा एक रम्य उपन्यास है। 'रूपदर्शी' मैकेल एञ्जिलोके जीवनकी एक घटनासे सम्बन्धित श्रेष्ठ उपन्यास है। चरित्र-चित्रण, वातावरण-सृष्टि आदिमें अय्यरजीको अपूर्व सफलता मिली है।

महाकवि कुवेम्पुजीका वृहत् उपन्यास 'कानूर सुब्बम्म हेग्गडिति' मलेनाडुका महाभारत है। इसमें प्रकृति और मानव प्रकृतिके संघर्ष एवं साहचर्यका सुन्दर चित्रण है। पात्रोंमें कवि सहज भावुकता मिलती है।

प्रो. गोंकाकजीका 'समरसवे जीवन' एक आदर्शवादी उपन्यास है। आदर्श तथा यथार्थका द्वन्द्व बहुत ही सुन्दर ढंगसे चित्रित है। १५०० पृष्ठोंका यह उपन्यास एक महाकाव्यात्मक उपन्यास (Epic novel) है। चरित्र-चित्रणमें गोंकाकजीको अद्भुत सफलता मिली है।

वी. एम. इनामदार हमारे मनोवैज्ञानिक उपन्यासकार हैं। उनके 'स्वर्गय-बागिलु', 'कनसिन मने' आदि उपन्यासोंमें मानवकी अतृप्त इच्छाओंकी मार्मिक व्यञ्जना है। जब स्त्री और पुरुषमें एक-दूसरेके मनको समझनेकी शक्ति नहीं रहती अथवा दोनोंकी रुचि विभिन्न हो जाए तो समझौतेके अभावमें उनका जीवन दुःखमय हो जाता है। ऐसी मानसिक समस्याओंका विश्लेषण इनमें पाया जाता है। इनका 'मूरावट्टे' 'भारत छोड़ो' आन्दोलनकी पृष्ठभूमिपर लिखा सुन्दर उपन्यास है।

श्रीमती त्रिवेणी हमारी सर्वश्रेष्ठ मनोवैज्ञानिक उपन्यास-लेखिका हैं। मनके विभिन्न स्तरोंमें निक्षिप्त-मनुष्यकी गुप्त कामनाएँ, अतृप्त वासनाओंका विकास आदिकी अपूर्व व्यञ्जना इनकी कृतियोंमें पाई जाती है। इनकी 'बेक्किन कण्णु' (बिल्लीकी आँख) ने कन्नड़ उपन्यास-क्षेत्रमें एक युगान्तर उपस्थित किया है।

कृष्णमूर्ति पौराणिक एक रोमाण्टिक उपन्यासकार हैं। उनके पचाससे अधिक उपन्यासोंमें मानवके हृदयकी विभिन्न वृत्तियोंकी सुन्दर व्यञ्जना दर्शित है। उपन्यासमें सर्वत्र एक प्रकारका रूमानी वातावरण रहता है। 'कोन्नार किकिनी', 'हेमन्तन मगळु', 'वेदारिन बेले' आदि इनके सुन्दर उपन्यास हैं।

मिर्जा अण्णाराव एक गम्भीर प्रवृत्तिके उपन्यासकार हैं। सामाजिक विषमताओंके प्रति उनके मनमें सात्विक सन्ताप है। 'भस्मासुर' इनका एक सफल राजनैतिक उपन्यास है। 'राष्ट्रपुरुष' सत्याग्रह आन्दोलनके समयका यथार्थ चित्रण करता है। 'निसर्ग' अण्णारावजीका सर्वश्रेष्ठ उपन्यास है। नाटककार श्रीरंगजीन भी उपन्यास लिखे हैं। 'प्रकृति', 'अनीदि' आदि उपन्यासोंमें विभिन्न सामाजिक समस्याओंका चित्रण और अच्छा व्यंग सम्बन्ध रहता है।

निरञ्जन मार्क्सवादी उपन्यासकार हैं। सामाजिक समस्याओंकी गम्भीर विवेचना इनमें पाई जाती है। 'विमोचन', 'रंगम्भन वठार' आदि उपन्यासोंमें मध्यवर्गीय समाजका यथार्थ चित्रण है। निरञ्जनजीकी शैलीमें अद्भुत संयम है, कहीं भी वे आवेशसे अभिभूत नहीं होते।

बसवराज कट्टेमनि हमारे एक और यथार्थवादी उपन्यासकार हैं। 'ज्वाला मुखिय मेले', 'जरतारि जगद्गुरु', 'नानू पोलीस नागिद्दे' आदि उपन्यासोंमें सामाजिक कुरूपताओं और कुष्ठाओंकी खिल्ली उड़ाई गई है। 'माडि मडिद्वरु'में स्वराज्य आन्दोलनका रम्य चित्रण है। अर्चिक वेंकटेश हमारे एक और यथार्थवादी उपन्यासकार हैं, जिनका 'अस्थि पञ्जर' अकाल पीड़ित जनताका वास्तविक चित्रण प्रस्तुत करता है।

श्री राव बहादुर हमारे सर्वश्रेष्ठ यथार्थवादी उपन्यासकार हैं। उनका 'ग्रामायण' हाल ही में प्रकाशित हुआ है। 'ग्रामायण' प्रेमचन्दजीके 'गोदान' की भाँति ग्रामीण जीवनका महाकाव्य (Sage of the village) है। ग्रामीण

जनताकी समस्या, जमींदार, फौजदार आदि द्वारा होनेवाले शोषण, धार्मिक नेताओं द्वारा होनेवाले अत्याचार आदिका अतीव सहज चित्रण मिलता है। गोदानकी भाँति इसमें भी केवल यथार्थवादी चित्रण है, आदर्शोन्मुख यथार्थवाद नहीं। ग्रामीणोंकी रूढ़िवादिता, साम्प्रदायिकता, उनकी समस्याओं आदिकी व्यञ्जना अत्यन्त सरल ढंगसे चित्रित है। 'ग्रामायण'की भाषा मुहावरेदार, चलती और अत्यन्त प्रभावशालिनी है। 'गोदान' के पश्चात् भारतीय जीवनका यथार्थ चित्रण करनेवाला सर्वश्रेष्ठ उपन्यास शायद 'ग्रामायण' ही है। 'ग्रामायण' हमारा गौरव ग्रन्थ है। स्वातन्त्र्योत्तर भारतकी सर्वश्रेष्ठ कृतियोंमेंसे यह भी एक है।

आजकल कन्नडमें उपन्यास-युग चल रहा है। साहित्यके अन्य अंग विस्मृत-से हो गए हैं। कन्नडके प्रत्येक ख्यातनामा उपन्यासकारने तीससे अधिक उपन्यास लिखे हैं। इधर सैकड़ों उपन्यास आ रहे हैं; किन्तु इनमें बहुत ही कम साहित्य संग्रहणीय है। युवक उपन्यासकारोंमें जीवनका गम्भीर दर्शन नहीं है, सकल्प बल नहीं है, अधिक स्वानुभूति नहीं है। अतः अनेक उपन्यास चर्चित चर्चण बन गए हैं। कृत्रिम वातावरण, काल्पनिक अनुभूति और रटी-रटाई अभिव्यक्ति इनमें पाई जाती है। इतना होते हुए भी कन्नड उपन्यासोंकी प्रगति कम नहीं है। जीवनकी सर्वांगीण अभिव्यक्ति करनेमें कन्नडके उपन्यासकार पीछे नहीं हटे हैं। उपन्यासोंकी वस्तु तथा तन्त्रमें अद्भुत विविधता नजर आती है। आजके कन्नडका उपन्यास साहित्य किसी भी भाषाके श्रेष्ठ उपन्यास-साहित्यसे टक्कर ले सकता है।

### कहानी :

डॉ. मास्ती वेंकटेश अय्यंगर हमारे कहानी-साहित्यके आद्य जनक हैं। परन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि इनके पहले कहानियोंका अस्तित्व ही नहीं था। पञ्जे मंगेशराव, एम. एन. कामत., केरूरु वामुदेवाचार्य आदिने कहानियाँ लिखी थी। किन्तु उनमें कहानी-कलाका पूर्ण सभावेश नहीं हो पाया था। अतः कहानी-कलाकी दृष्टिसे मास्तीजी ही हमारे प्रथम कहानीकार हैं, समयकी दृष्टिसे भी, सत्वकी दृष्टिसे भी। वे हमारे कहानी-सम्राट् हैं। मास्तीजी प्रकृतिकी, जीवनकी उमकी विविधता, चित्र-विचित्रतामें देखते हैं। अपनी कला और अपने बीच वे इतर सम्भाषण तक आने नहीं देते। वक्तव्य विषयकी आप ही बताकर वस्तुके साथ सीधा सम्बन्ध रखते हैं। कहानी कला मास्तीजीको निसर्गगत वरदान है। निरंशिरणीकी भाँति उनकी कला सहज एवं रम्य है। किसी आलोचकने ठीक ही कहा है—  
 “मास्तीजीकी कला माताकी छातीपर चिपककर दूध ढूँढनेवाले शिशुकी भाँति है, उसे दूध ही नहीं प्रेम भी मिलता है।” हेमकूटदिद हिंदिरुगिद मेले' कहानीमें मास्तीजी पतिगृह-वासिनी शकुन्तलाको अपने पुत्र भरतके साथ फिर कण्वाश्रममें लाते हैं। उसमें शकुन्तलाको ज्वरमुक्त शिशुका आनन्द मिलता है। इस कहानीकी कला

वर्णनातीत है। 'सारिपुत्र कोनेयदि नगळु', 'आचार्यर पत्नी' आदिमें भी इसी प्रकारके मार्मिक प्रसंग हैं। 'कवियत्राळ कोनेय दिनगळु' में कवि गेटकी अन्तिम घड़ियोंका सुन्दर चित्रण है। गेटे अर्ध जाग्रतावस्थामें बैठे-बैठे अपने विगत जीवनकी घटनाओंका पुनरनुभव करता है, अपने प्रिय लेखक कालिदास, शंक्सपियर आदि कविजनोसे मिलता है और अन्तमें 'अधिक आलोक' की 'खोज' में इसकी आत्मा चली जाती है। इसका अत्यन्त मार्मिक चित्रण है। इसमें 'इन्दियेयो अल्लवो' में 'Flash back' की सुन्दर योजना है। 'भसुभत्ति' में हमारे सांस्कृतिक वैभव पर मुग्ध होनेवाली एक विदेशी नारीका भव्य चित्रण है। 'मोसरिन मंगम्भ' 'वेंकटशामिय प्रणय' आदि हमारे ग्रामीण जीवन व्यक्तियोंके ललित चित्र हैं। मास्तीर्जीने अधिक नहीं लिखा है। पैतीस-चालीस कहानियाँ लिखी हैं, किन्तु वे सभी एक-सी हैं। मास्तीर्जी मानवतावादी लेखक हैं। उनकी कहानियोंमें कला एवं जीवन एक होकर चलते हैं। मास्तीर्जीकी हर कहानीमें परिणामान्विति (Unity of impression) दिखाई देती है। अतः उनकी कहानियाँ परिणाममें रमणीय बनी हैं। मास्तीर्जीकी सबसे बड़ी विशेषता है सरलतम भाषामें प्रबलतम भावोंको भरनेकी शक्ति, सुकुमारसे सुकुमार भावोंको साफार करनेकी अद्भुत कला। इस दृष्टिसे अन्य भारतीय भाषाओंमें इनकी टक्करके कलाकार कम ही मिलेंगे।

मास्तीर्जीके पश्चात् श्री आनन्दजीका स्थान है। आनन्दजी भी सुकुमार वृत्तियोंके शिल्पी हैं। इनकी कहानियोंमें कौटुम्बिक जीवनके सुन्दर एव सरस चित्र मिलते हैं। 'ना कोदहुडुगि' (लडकी, जिसे मैंने मारा) देवदासी प्रथापर लिखी इनकी सर्वश्रेष्ठ कहानी है। 'हेण्डतिय कागद' (पत्नीकी चिट्ठी) कहानी कलाकी दृष्टिसे अत्युत्कृष्ट है। 'मातगाति' (जादूगरनी) 'सरसिम गोम्ब' आदि इनकी अन्य उल्लेखनीय कहानियाँ हैं। इनकी भाषामें प्राञ्जलता है, शैली रोचक है। आनन्दजी हमारे रोमाण्टिक कहानीकार हैं।

श्री के. गोपालकृष्णरावकी 'बगारद डाबु' 'कोंदवह यारु' आदि कहानियाँ जीवनके मार्मिक प्रसंगोंका निरूपण करती हैं। भारतीय प्रियकी कहानियाँ बहुत ही भावुक हैं। 'मोची' उनकी सर्व श्रेष्ठ कहानी है। 'रुद्रवीण' कहानी संग्रहकी कहानियोंमें जीवनके कारुणिक प्रसंगोंकी मार्मिक व्यञ्जना है। वातावरणकी सृष्टिमें लेखकको अद्भुत सफलता मिली है। बेटगरीर्जीने 'संसार चित्र' आदि संग्रहकी कहानियोंमें ग्रामीण जीवनके सुन्दर चित्र उपस्थित किए हैं। कृष्ण कुमार कल्लूरर्जीकी 'मंगन मेखणिग', आदि कहानियोंमें मानसिक गुत्थियोंको सरस ढंगसे सुलझाया गया है। कहानी साहित्यकी श्रीवृद्धिमें स्त्री लेखिकाओंमें भी काफी हाथ बँटाया है, जिनमें स्व. गौरम्मा, कामाटाम्मा, श्यामला जयलक्ष्मी, श्री निवासन, आदि मुख्य हैं। श्रीमती त्रिवेणीजीकी कहानियाँ मनोवैज्ञानिक हैं।

अ. न. कृष्णराव ('शिल्पी', 'अग्निकन्ये' आदि) संग्रह वसवराज कट्टीमनी ( कारवान ) त. रा. सु. निरञ्जन आदि हमारे यथार्थवादी कहानीकार हैं। चदुरंगजीकी कहानियोंमें ग्रामीण जीवनका यथार्थ चित्रण है। श्री राव बहादूरकी 'मने सुट्ट किडि मने बेळगितु' कहानीको अन्तर्राष्ट्रीय पुरस्कार मिल चुका है।

कहानीमें नया तन्त्र लानेवाले नयेतन्त्रके कहानीकारोंमें अनन्तमूर्ति 'एदेदिगू मुगियद कते' (कभी खतम न होनेवाली कहानी), रामचन्द्र शर्मा (मन्दार आदि संग्रह), सदाशिव (नलमे जल आया) आदि उदात्तमान कलाकरोंके नाम उल्लेखनीय हैं। इनकी कहानियोंमें नया तन्त्र, प्रतीकात्मक चरित्र, प्रतिभानिष्ठ भाषा आदिका सफल प्रयोग है। कन्नड़ कहानियोंकी प्रगति सन्तोषप्रद है। नई पीढ़ीके प्रतिभावान कहानीकार कन्नड़ कहानीके उज्वल भविष्यकी आशा दे रहे हैं।

### आलोचना :

आधुनिक कन्नड़ साहित्यके आचार्य स्व. प्रो. बी. एम. श्रीकण्ठय्याजीको आलोचनाके भी प्रवर्तक कह सकते हैं। किन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि उनके पूर्व आलोचना र्थी ही नहीं। प्राचीन साहित्यके पुनरुद्धारके समय पाश्चात्य विद्वानोंने, जिनमें राइस, किट्टल, आदि मुख्य हैं, उन प्राचीन ग्रन्थोंकी महत्वपूर्ण भूमिका अंग्रेजीमें लिखी थी, किन्तु विदेशी होनेके कारण इनकी कृतियोंमें भाषा एवं संस्कृतिका गहरा ज्ञान नहीं लक्षित होता है, आत्मीयता भी नहीं है; फिर भी इनके ग्रन्थोंमें आलोचनाकी प्रगतिमें काफी योग दिया है। स्व. रा. नरसिंहाचार्यजीके 'कवि चरिते' के तीनों सम्पुटोंने पहली बार कन्नड़ साहित्य-सम्पदाका परिचय कराया। किन्तु उसमें साहित्यका परिचय मात्र है, आलोचना उतनी नहीं। पर इन ग्रन्थोंकी भूमिकाका अक्षुण्ण महत्व है।

प्रो. बी. एम. श्रीकण्ठय्याजीने इस ओर महत्वपूर्ण कार्य किया। प्राचीन काव्योंके मूल्य एवं स्थान निर्देशमें उन्होंने महत्वपूर्ण कार्य किया। प्राचीन कन्नड़के ग्रन्थोंका सम्पादन, परिष्करण आदिका वैज्ञानिक आरम्भ इन्हींसे होता है। 'कन्नड़ कैयिडी' के द्वितीय सम्पुटमें कन्नड़ साहित्यके आदि कालपर लिखा उनका 'कन्नड़ साहित्य चरित्र' एक उच्च कोटिका ग्रन्थ है, जिसमें काल-निर्णय, स्थान निर्णय आदिके बारेमें शाश्वत मूल्योंकी पतिष्ठा की गई है। कन्नड़ छन्द तथा भाषापर उनकी मौलिक सूझ उनकी प्रखर प्रतिभा की परिचायिका है। विभिन्न ग्रन्थोंकी भूमिका तथा व्याख्यानोंमें उनके जो कुछ वक्तव्य हैं, वे सब आलोचनात्मक हैं। अंग्रेजी संस्कृत, तमिळ आदि साहित्योंके प्रौढ़ पाण्डित्यके साथ सहृदयता भी उनमें भरपूर थी। अतः प्राचीन साहित्यके मूल्यांकनमें उन्होंने अद्भुत शक्तिका परिचय दिया है। किन्तु उनका जीवन कर्नाटक जन जागृतिमें ही अधिक भग्न होनेके कारण वे दत्तचित्त हो एक आचार्य-कृति हमें नहीं दे सके। शुक्लजीकी

भाँति उनकी आलोचना पद्धति व्यावहारिक नहीं थी। वे आलोचनाके स्थायी मूल्योंकी उद्भावना नहीं कर सके। मैसूर विश्व-विद्यालयकी मुख पत्रिका 'प्रबुद्ध कर्नाटक' तथा उत्तर कर्नाटककी 'जयकर्नाटक' आदि पत्रिकाओंने आलोचना साहित्यके क्षिप्र विकासमें गति दी। मास्तीजीका 'विमर्श' (छह भाग) इस मार्गमें एक मील-स्तम्भ है। इनमें प्राचीन कन्नड़ कवियोंके साथ अन्य भाषाके सन्तों व कवियोंपर परिचयात्मक लेख हैं। इनमें आलोचनासे अधिक रसकी वृष्टि अधिक है। 'आदि कवि वाल्मीकि' 'रवीन्द्रनाथ ठाकुर' आदि ग्रन्थोंमें व्यक्तित्व तथा कवित्व की सुन्दर आलोचना है। उनका 'साहित्य' (१९२४) कन्नड़का प्रथम सैद्धान्तिक आलोचनात्मक ग्रन्थ है। इसमें साहित्यिक स्वरूप, काव्यके विभिन्न पक्ष ( रागांश, चिन्तनांश, कल्पनांश, रूपांश ) आदिका परिचय है। यह श्यामसुन्दरदासके 'साहित्यलोचन' से भी सरस कृति है। अपनी भूमिकाओंमें मास्तीजीने आधुनिक साहित्यपर जो कुछ लिखा है, उनका महत्वपूर्ण स्थान है। रोमाण्टिक सम्प्रदायके सब तत्व उनकी आलोचना में दर्शित हैं।

डा. डॉ. वी. गुण्डप्पार्जी हमारे प्राचीन सम्प्रदायके आलोचक हैं। वे मैथ्यू आर्नल्डसे प्रभावित हैं। उनके 'जीवन सौन्दर्य मत्तु साहित्य', 'साहित्य शक्ति' आदि उच्च कोटिके सैद्धान्तिक ग्रन्थ हैं। किन्तु इनकी आलोचना केवल सैद्धान्तिक है। किसी सर्जित्व साहित्यसे सम्बन्धित न होनेके कारण उनका प्रभाव बहुत ही कम है।

स्व. प्रो. टी. एस. वेङ्कणय्या तथा डॉ. ए. आर. कृष्णशास्त्रीजीने 'प्रबुद्ध कर्नाटक' के द्वारा आलोचना क्षेत्रमें महत्वपूर्ण कार्य किया है। डॉ. ए. आर. कृष्णशास्त्रीजीके 'संस्कृत नाटक', 'भासकवि', 'बंकिमचन्द्र' (साहित्य अकादमीसे पुरस्कृत) आदि ग्रन्थोंमें निष्पक्ष आलोचनाके दर्शन होते हैं। स्व. प्रो. हिरियण्णा-जीका कथन है कि 'संस्कृत नाटक'—जैसा उत्कृष्ट आलोचनात्मक ग्रन्थ अंग्रेजीमें भी नहीं है। मार्मिक स्थलोंकी पहचान, दोष दर्शनकी सूक्ष्म प्रज्ञा तभी आकर्षक शैलीने इनके ग्रन्थोंके मूल्यको बढ़ाया है।

श्री गोविन्द पैर्जीके संशोधनात्मक लेख 'मूरु उपन्यासगळु' डॉ. ए. वेंकट सुब्बय्याजीका 'केलवु कन्नड़ कविगळु जीवनकाल विचार' आदिमें श्रेष्ठ समालोचनाके दर्शन होते हैं। स्व. मुळिया तिमम्पय्याजीका 'नाडोज पम्प', स्व. एम. आर. श्रीनिवासमूर्तिजीका 'वचन धर्मसार' डॉ. दिवाकरजीका 'वचनशास्त्र रहस्य' आदि हमारे श्रेष्ठ प्रायोगिक आलोचना तथा व्याख्यात्मक ग्रन्थ हैं।

डॉ. रं. श्री. मुगुळी हमारे सौष्ठववादी समालोचक हैं। उनके 'रन्न कृतिरत्न', 'साहित्योयासने', 'तवनिधि', 'कन्नड़ साहित्य चरित्र' ( साहित्य अकादमीसे पुरस्कृत ) आदि श्रेष्ठ आलोचनात्मक ग्रन्थोंमें कन्नड़ साहित्यके विविध प्रकारोंपर सरल आलोचना है। किन्तु इनमें तादात्म्य तथा अनुभूतिकी कमी है।

आलोचककी सूक्ष्म पैठ नहीं है। 'कन्नड़ साहित्य चरित्रे' समग्र कन्नड़ साहित्यका आलोचनात्मक इतिहास प्रस्तुत करनेका प्रथम प्रयास है जो वास्तवमें एक मार्गदर्शी कृति है।

श्री द. रा. वेन्द्रे तथा 'कुवेम्पु' जीने भी आलोचनात्मक ग्रन्थ लिखे है। 'साहित्य संशोधने' आदि ग्रन्थोंमें उनकी उत्कृष्ट आलोचना शैलीके दर्शन होते हैं। अनुभूति तथा विचारका अप्रतिम संगम—है। 'काव्ययोग' शुक्लजीके 'काव्यकथा' की ही भाँति उनकी एक मौलिक मूल्योंकी प्रतिष्ठा करनेवाली कृति है।

कुवेम्पुजीने 'तपोनन्दन', 'साहित्य विहार', 'विभूतियूजे' आदि ग्रन्थोंमें प्राच्य तथा प्रतीच्य आलोचना पद्धतियोंका एक नया परिपाक दिया है। किन्तु कुवेम्पुजीका अधिक काव्यमय शैली जो साहित्यलोचनके लिए अनावश्यक है, भावकों अस्पष्ट बना देती है। उनकी भाषा दार्शनिक जटिलतासे बोझिल हो जाती है। फलतः पाठक झमेलेमें पड़ जाता है।

प्रो. एस. बी. रंगणार्जीकी शैली ( दो भाग ) 'होश शूल' आदि आलोचनात्मक कृतियोंमें प्राचीन साहित्यको नवीन मूल्योंपर परखनेका प्रयत्न किया है जिसमें उनको काफी सफलता मिली है।

प्रो. ती. नं. श्रीकण्ठैय्या हमारे सर्वश्रेष्ठ आलोचकोंमेंसे एक है, उनकी 'भारतीय काव्य मीमांसे' भारतीय काव्य-शास्त्रका सर्वेक्षण करनेवाली आचार्य कृति है। अनुभूति तथा विचारका मधुर संगम इनकी आलोचनाकी विशेषता है। 'काव्य समीक्षे', 'सम लोकन' आदिमें प्राचीन तथा समकालीन साहित्यकी मार्मिक मीमांसा है।

प्रो. बी. सीतारामय्या तथा प्रो. बी. के. गोककजी हमारे उल्लेखनीय विदग्ध समलोचक हैं। बी. सी. जी. की आलोचनामें एक प्रकारकी अस्वस्थता तथा अतृप्ति दर्शित होती है। किन्तु गुण-दोषोंको शीघ्र परखनेकी सूक्ष्म दृष्टि उनमें है। प्रो. बी. के. गोककजीकी भी आलोचनापर पाश्चात्य आलोचना शैलीका प्रभाव है। वे एक आदर्शवादी आलोचक हैं।

अ. न. कृष्णराव हमारे प्रगतिवादी आलोचक हैं। उनकी आलोचनामें सम्प्रदाय विरोध तथा विचारकी प्रधानता है। प्रो. डी. एल. नरसिंहाचार्य हमारे प्रौढ़ परम्परावादी आलोचक हैं। इनकी आलोचनामें तलस्पर्शी पाण्डित्य तथा विचारकी प्रधानता है। हमारे उदीयमान आलोचकोंमें सर्व श्री के. डी. कुर्तुकोटे, गोपालकृष्ण अडिग, नायक आदि मुख्य हैं। श्री कुर्तुकोटेजीके 'नडुबन्ददारि' (तीन भागोंमें) कन्नड़ साहित्यका एक समग्र सर्वेक्षण करनेवाला आचार्य ग्रन्थ है। गम्भीर पाण्डित्य, सूक्ष्म, विमर्शन शक्ति आदिसे मण्डित इनकी आलोचनाने कन्नड़ साहित्यके इतिहासमें एक नया अध्याय खोल दिया है।

श्री अडिगजी कवि अधिक है; किन्तु अपने प्रयोगवादी काव्यकी भूमिकामें आपने जो कुछ लिखा है, उसमें आपकी काव्य मर्मज्ञता, तीव्र विचार शक्ति तथा एक सात्विक प्रवृत्ति दर्शित है। आपके 'नडेदुबदेदारि' की भूमिकाका ऐतिहासिक महत्व है।

### निबन्ध :

निबन्ध साहित्यका आरम्भ गत शताब्दिके अन्तिम कवि मुद्दुनसे ही होता है। ईसाई मिशनरियोंकी प्रचार पत्रिकाओंमें इसके पहले भी निबन्ध प्रकाशित होते थे, किन्तु उनका साहित्यिक मूल्य नहीं है। मुद्दुनका 'जोगुळ' ( लोरियाँ ) शब्दकी व्युत्पत्तिपर ( १९०० में ) एक भाषा वैज्ञानिक निबन्ध है। पर इसमें निबन्धकी वैयक्तिकताका नितान्त अभाव है। अतः यह लेख अधिक है। पञ्जे मंगेशराव हमारे प्रथम निबन्धकार हैं, जिन्होंने दक्षिण कन्नड़के मिशनरियोंकी पत्रिका 'सत्य दीपिके' में 'हरटेगल्ल' ( गप्पबाज ) के नामसे अनेक निबन्ध लिखे हैं। 'हल्ली' ( छिपकली ) इनका श्रेष्ठ एव सुसूचितपूर्ण निबन्ध है। इसके पश्चात् कन्नड़में निबन्धोंकी अद्भुत प्रगति होने लगती है। 'प्रबुद्ध कर्णाटक', 'जयकर्णाटक', 'परिपत्रिके' आदि पत्रिकाओंमें निबन्ध साहित्यके विकासमें अद्भुत योग दिया। आलोचनात्मक निबन्धोंको छोड़कर हम यहाँ केवल लघु निबन्धोंकी चर्चा करेंगे।

'हरटेगळु' ( गप्पे ) 'सळुवु', 'होळुवु' आदि संग्रहोंके द्वारा वैयक्तिक निबन्धोंका विकास हुआ। हमारे निबन्धकारोंमें आलूर वेंकटराव, पण्डित तारानाथ आदि मुख्य हैं। आलूरजीके 'कर्णाटक गत वैभव' ने कर्णाटक जन जागृतिमें अद्भुत कार्य किया। मास्तीजी एक सफल निबन्धकार भी हैं। उनके 'पूजन' 'चिन्तन' 'प्रसंग' आदिमें विभिन्न साहित्यिक विषयोंपर सुन्दर निबन्ध हैं।

श्री सिद्दवन हळ्ळी कृष्णशर्मा एक उच्च कोटिके वैचारिक निबन्धकार हैं। 'होसयुग धर्म' ( नवीन युगधर्म ) में विचार एवं अनुभूतिका मञ्जुल सामञ्जस्य है। श्री बेन्द्रेजीके निबन्धोंमें उनका गहरा पाण्डित्य एवं रसात्मकता आदिके दर्शन होते हैं। 'काव्य योग' उनका सर्वश्रेष्ठ निबन्ध है। रूपात्मकता इनकी शैलीकी विशेषता है, उनके विनोदात्मक निबन्धोंमें शैली स्वच्छन्द है, हास्यकी उत्ताल तरंगोंके दर्शन होते हैं।

मुगुलीजीके निबन्ध साहित्यिक विषयपर अधिक हैं। पदलालित्य, प्रसाद गुण, गम्भीर विचारशैली उनकी विशेषता है। डॉ. वी. गुण्डप्पार्जी हमारे विचारवादी सांस्कृतिक निबन्धकार हैं। 'संस्कृति', 'साहित्यशक्ति' 'राजकीय प्रसंग गळु' आदिमें उनकी गम्भीर विचारधारा एवं शैलीके दर्शन होते हैं। प्रो. गोकार्जीके साहित्यिक निबन्धोंमें श्रेष्ठ आलोचनात्मक शक्ति, तथा सूक्ष्म

विश्लेषण है। प्रो. ती. न. श्री, प्रो. एस. वी. रंगणा आदि निबन्धकारोंने गम्भीर साहित्यिक निबन्ध लिखे हैं। अ. न. कृष्णराव प्रगतिवादी निबन्धकार हैं। इनको पढ़ते समय हमें हिन्दी साहित्यके आलोचक डॉ. रामविलास शर्माजीकी याद आती है। 'साहित्य मत्तु युगधर्म' 'साहित्य और जन-जीवन' 'साहित्य समाराधन' आदिमें वैचारिक क्रान्ति है।

श्री ना. कस्तूरि श्रेष्ठ व्यंग्य निबन्धकार हैं। 'यद्वा-तद्वा' (अष्ट शष्ट) 'डोंकुवाल' (कुत्तेकी तिरछी पूँछ), 'उपायवेदान्त' आदिमें जीवनोंकी विभिन्न विकृतियोंकी हास्यमय व्यञ्जना है। कारन्तजीके (स्नान आदि) निबन्धोंमें विडम्बनकी प्रधानता है। श्रीरंगजीका व्यंग्य कभी-कभी 'अति' पर पहुँच जाता है। वी. सीतारामय्याजीके निबन्ध ललित एवं चिन्तन प्रधान हैं। पु. ति. नरसिंहाचार्यजीके 'ईचलमरद केळगे' आदि निबन्धोंमें भावुकताका पुट है। प्रो. ए. एन. मूर्तिराव हमारे सर्वश्रेष्ठ निबन्धकार हैं। उनके 'हगलुगनमुगळु' (दिवास्वप्न), 'अलेयुव मन' (सञ्चारी मन) आदि निबन्ध संग्रहोंमें (चाल्स लैम्ब) की अन्तः प्रज्ञा तथा हैज़लटकी व्यापक अनुभूतिके दर्शन होते हैं। लालित्य आपकी शैलीकी विशेषता है। राजरत्न, गदगकर, रा. शि. नाडिगर बी.ची आदि हमारे अन्य व्यंग्य विनोद निबन्धकार हैं।

हमारे उदीयमान निबन्धकारोंमें गौरीश कार्दकणि, श्रीधर, कुर्तुकोटे, ए. के. रामानुजम आदि मुख्य हैं।

जीवनियोंमें स्व. एम. एस. पुट्टण्णाजीका 'कुणिगल', 'रामाशास्त्रिगळ चरित्रे', डी. वी. गुण्डप्पाजीका 'गोखले', श्रीरंगजीका 'केमालपाश', नेरगजीका 'श्रीरंग', त. रा. सु. जीका 'अ. न. क.', आदि मुख्य हैं। सी. के. वेकटरामय्याजीके 'आळुव महास्वामियवर' 'पैगम्बर महम्मद', देशपाण्डेजीका 'गुरुदेव रानडे' दिवाकरजीका 'मोहरे हनुमन्तु रायरु', कृष्ण शर्माजीका 'सरदार वल्लभभाई', राघवेन्द्रय्याजीका 'च. वासुदेवय्यनवर' ना. कस्तूरीजीका 'अशोक', आनन्द कन्दका 'राजेन्द्र प्रसाद', टी. टी. शर्माजीका 'विश्वेश्वरय्य' आदि मुख्य हैं। पुट्टण्णाजीका 'स्वामी विवेकानन्द' किसी भी भाषाको गौरवान्वित करनेवाली रोमाण्टिक जीवनी है।

आत्मकथात्मक साहित्यमें श्री मधुरचेन्नजीकी 'पूर्वरंग' एक रहस्यवादी आत्मकथा है। द. रा. बन्द्रेजीका 'चतुर्मुख', राजरत्नजीकी 'हनुवर्ष', कारन्तजीका 'हृच्चुमनस्सिन हतुमुरुगळु', गोंकाकजीके 'रस निमिषगळु' आदि मुख्य हैं।

डायरी साहित्यमें श्री गोंकाकजीके 'समुद्रदाचेयिद' अश्वत्थनारायणरावजीके 'बिडुगडय बले' आदि मुख्य हैं।

पत्र साहित्यमे श्रीं सीं. कृष्णजीके 'मुगुदेयर पत्रगळु', गोकाकजीके 'वनमालिम पत्रगळु', एन. के. कुलकर्णीके 'पत्रगळु', एस. वीं. कृष्णमूर्तिरावजीका 'दिल्लिय पत्रगळु' आदि मुख्य है।

यात्रा साहित्यमे श्रीं वीं. सीं.की 'पम्पा यात्रे' एक रोचक ग्रन्थ है। कारन्तजीके 'अपूर्व पश्चिम', दिनकर देसाईके 'ना कण्ड पडुवण' गोकाकजीसे 'समुद्रदीर्घेयिद', मान्वीं नरसिंहरावजीके 'कन्नडयात्रे' गोसावींजीके 'हिमालय दर्शन' आदि मुख्य है।

रेखा-चित्रोमे श्रीं वेन्द्रेजीके 'आलूर' और मञ्जापार्जीके 'चित्र', कृष्ण शर्माजीके 'वर्घायात्रे', त. रा. सु. का 'रेखाचित्रगळु', अ. न. कृष्णरावके 'कर्नाटक कलाविदरु', कन्नड कुल रसिकरु, आदि मुख्य है। प्रभुशकर, 'बवळेस्वर, जड़भरत, हट्टेमल्ल आदि क्षेत्रके अन्य उल्लेखनीय नाम है।

गद्य-चित्रोमें गोरूररामस्वामी अय्यंगारजीके 'नम्मूर रसिगकरु', 'हळिळय चित्रगळु' आदि मुख्य है। गोरूर हमारे सर्वश्रेष्ठ गद्य चित्रकार है। पुट्टप्पाजीका 'भलेनाडिन चित्रगळु' पु. ति. नरसिंहाचारजीका 'रथसप्तमी मत्तु इतर चित्रगळु' आदि मुख्य है।

रिपोर्ताजमे श्रीं रामचन्द्र शर्माजीकी 'प्रतिभा दर्शन' को. चेन्नवसप्पाजीके 'कुवेम्पु सन्दर्शन', द. वा. कुलकर्णीके 'हक्किनाट' आदि पुस्तके उल्लेखनीय है। पा. वें, ईश्वर सणकल्ल, के. वीं. सुब्बण्णा आदि इस क्षेत्रके अन्य उल्लेखनीय नाम है।

सम्भरण ग्रन्थोमे नदरत्न रामरावजीका 'नेनहळुगळु' एक सुसंस्कृत अभि-जात व्यक्तिकीं जीवन-यात्रा तथा कर्नाटकके अर्ध शताब्दीके सामाजिक, सांस्कृतिक तथा राजकीय जीवनका रत्न दर्पण है। आलूर वेकटरावजीके 'जीवनस्मरण', स्व. वासुदेवाचार्यजीका 'ना कण्ड कलाविदरु', हुसळि भीवरावजीका 'कविय केलनु नेनपुगळु' आदि मुख्य है।

वैज्ञानिक साहित्यमे नरसिंहय्याजीके 'जगत्तुगळे हुट्टुमावु', 'शक्ति' तथा लक्ष्मणरावजीके 'परमाथु विन चरित्र' आदि मुख्य है। श्रीं कारन्तजीके 'बाल प्रपञ्च', 'जगत्तु' आदि विश्वकोश किसी भी भाषाको गौरवान्वित करनेवाले है। 'यक्षगान' यक्षगान, ( लोकनाटक ) पर लिखित आपका सर्वश्रेष्ठ ग्रन्थ है, जिसको साहित्य अकादमी तथा स्वीडिश अकादमीके पुरस्कार मिल चुके है। कृष्ण शर्माजीका गांधी साहित्य हमारे राष्ट्रीय साहित्यकी स्थायी निधि है। वीं. सीं. जींका 'अर्थशास्त्र', डी. वीं. जीं. का 'राज्यशास्त्र', डॉ. श्रीं कण्ठशास्त्रीजीका 'भारतीय सस्कृति', बाल सुब्रह्मण्यका 'अरिस्टाटलन काव्य मीमांसे' के वीं. सुब्बण्णाका 'दशरूपक', डॉ. के. कृष्णमूर्तिजीके 'ध्वन्यालोक' 'काव्य प्रकाश', 'काव्यालकार', आदि अपनी ही एक परम्पराकी स्थापना कर रहे है। रा. पा. धारवाडकरजीका 'भाषाशास्त्र', श्रीरंगजीका 'शारदेय संसार' आदि भाषा वैज्ञानिक ग्रन्थ है।

‘कुवेम्पु’

[कवि-परिचय]



## ‘ कुवेम्पु ’

सह्याद्रिका अञ्चल ‘ मलेनाडु ’ कर्नाटकमें प्रकृति-नटीका लीला-निकेतन है; वह कर्नाटकका ‘ लेक डिस्ट्रिक्ट ’ है जिसने कन्नड़के वर्ड्सवर्थ कवि कुवेम्पुको जन्म दिया है। पन्तजीके जीवनमें कूर्माञ्चल प्रदेशका जो स्थान है, वही कुवेम्पुजीके जीवनमें मलेनाडुका है। इसी श्यामल काननसे शोभित एवं पर्वतके उत्तुंग शिखरोंसे मण्डित प्रदेशमें सह्याद्रिके निचले भागमें, तीर्थ हळळी तालुकाके कुप्पाळि नामक गाँवमें २० दिसम्बर १९०४ को एक अभिजात कुनबी ( ओक्कलिंग ) कुटुम्बमें श्री के. वी. पुट्टप्पाजीका जन्म हुआ। \*कुवेम्पुजीके पिता श्री वेकटप्पाजीने एक धनी, सुसंस्कृत तथा उस प्रान्तभरके सम्माननीय परिवारमें जन्म लिया था। कुवेम्पुजीका शैशव सह्याद्रिके अञ्चलके गिरि-कानन तथा निर्झरिणियोंके किनारे स्थित वृक्षावलिओंपर स्वच्छन्द रूपसे विचरनेवाले शुक्र-पिक आदि विपिन विहंगमोंके संग प्रकृतिकी कोमल क्रीडमें व्यतीत हुआ। बचपनसे ही उनमें प्रकृतिके प्रति एक विलक्षण आकर्षण एवं, शिशु-सहज कुतूहल जागृत था। अपने बचपनमें ही कुवेम्पुजी घण्टों एकान्तमें बैठकर प्रकृतिके रमणीय सौन्दर्यको देख-देखकर आश्चर्यचकित एवं उससे प्रभावित हो उठते थे। मलेनाडुकी कल्लोलमालिनी नदियाँ, शैलमालाएँ, वनस्थलियाँ, विहंगमोंका कल कूजन, मेघ मण्डित नील गगन, हरी-भरी झाड़ियाँ, चन्द्रिका चर्चित यामिनी, दिवा-रात्रिको लालिमासे संलग्न करनेवाली सन्ध्या, मधुमासमें फट पड़ने-

\* श्री के. वी. पुट्टप्पाजी साहित्य क्षेत्रमें अपने ‘ कुवेम्पु ’ उपनामसे ही प्रख्यात हैं।

वाली कुसुम-कलियाँ, नभोमण्डलपर दमक-दमककर अदृश्य होनेवाली सौदामिनी आदि किसी अज्ञात सत्ताका आभास दे देकर चलती थीं। पर्वत प्रान्तकी अलङ्घ्य गरिमा उनके शिशु मनको आश्चर्य तथा भयसे अभिभूत करती थी तथा उनके हृदयमें रहस्यमय स्वर-लिपि अंकित करती थी। स्वभावतः एकान्तप्रिय 'कुवेम्पु' पन्तजीकी भाँति जनभीरु थे। आकाशमे जब मेघखण्ड एकत्रित होते तो कवि पुलकाकुल हो नाच उठता था। सूर्योदय, चन्द्रोदय प्रकृतिकी वासन्ती छटा, खगमृगोंका कूजन-विहार कविके किशोर मनपर इन्द्रजालका जाल बुन देते थे। तीर्थ हल्लोंके मिडिल स्कूलमें पढ़ाई पूर्ण करनेके पश्चात् हाइस्कूलमें पढ़नेके लिए वे मैसूर गए। मैसूर उन दिनों ही नहीं वरन् आज भी समग्र दक्षिणका कला-केन्द्र रहा है। वहाँ उनकी सौन्दर्य-प्रज्ञा और भी विकसित हो उठी। रामकृष्ण आश्रममे उनका विद्यार्थी जीवन व्यतीत हुआ। राम-कृष्ण आश्रमके पावन वातावरणने कविके जीवन निर्माणमे अद्भुत कार्य किया। 'कुवेम्पु' जी मिशन हाइस्कूलसे निकलकर महाराजा कालेजमें शामिल हुए। उनके विद्यार्थी-जीवनका काल कन्नड़ साहित्यके इतिहासका ही क्यों भारतभरमें एक पर्वकाल था। उन दिनों देशभरमे सांस्कृतिक पुनर्जागरणकी लहरें दौड़ रही थी। राम-कृष्ण परमहंस, विवेकानन्द, कवीन्द्र रवीन्द्र आदि महाविभूतियोंने देशके इस छोरसे उस छोर तक क्रान्तिकी अमन्द मन्दाकिनी बहाई। तिलक, महात्मा गाँधी आदि महान् व्यक्तियोंके राजकीय आन्दोलनोंने इसे अपूर्व गति दी। इन सबके पूर्व पाश्चात्य-साहित्यके सम्पर्कके कारण देशभरमें सर्वत्र नवीन विचारधाराएँ, नवीन दृष्टिकोण नवीन जीवन-प्रणाली आदिकी लहरोंने नवयुवकोंके जीवनकी गति ही बदल दी। इस त्रिवेणीमें कुवेम्पुजीने पूर्णरूपसे अवगाँहन किया।

कन्नड़ साहित्यमें अपनी नवीन विचार धाराके द्वारा युगान्तर उपस्थित कर एक नवीन युग प्रवर्तन करनेका श्रेय स्व. बी. एम. श्री कण्ठैयाजीको मिलता है। बी. एम. श्री कण्ठैयाजी कन्नड़के आधुनिक साहित्यमें मन्त्रदाता एवं पुरोहित है। हिन्दी साहित्यमें बाबू भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, महावीर प्रसाद द्विवेदीजीने जो काम किया, वही कन्नड़में करनेका श्रेय स्व. बी. एम. श्रीकण्ठैयाजीको मिलता है। 'कुवेम्पु' जीको इनके चरणोंमें बैठकर ज्ञान-लाभ करनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ। महाराजा कालेजसे एम. ए. पासकर 'कुवेम्पु' जी १९२६ ई. में मैसूर विश्वविद्यालयमें कन्नड़के अध्यापक पदपर नियुक्त हुए। १९४५ ई. में वे मैसूर विश्वविद्यालयके कन्नड़ विभागके अध्यक्ष बने। करीब बारह वर्षतक उस पदपर रहकर हजारों विद्यार्थियोंके प्रेरणा-प्रदीप बने रहे। वे सन् १९५७ में मैसूर विश्वविद्यालयके उपकुलपति (वाइस चान्सलर) हुए। गत वर्षसे सेवा-निवृत्त होकर अब आप विश्रान्ति ले रहे हैं। १९५७ में आपके द्वारा रचित 'रामायण दर्शन' पर भारत सरकारकी साहित्य अकादमीकी ओरसे पुरस्कार प्राप्त हुआ। १९५९ में केन्द्रीय सरकारने 'पद्मश्री' नामक उपाधिसे आपकी भूषित किया। १९५८ में मैसूर विश्वविद्यालयने डी. लिट्

देकर आपकी मेधाशक्तिका गौरव किया। सरकारी पदपर रहनेपर भी आप स्वतन्त्रता-आन्दोलन, भाषावार प्रान्त-रचना, मातृभाषाको शिक्षणका माध्यम बनाना, कन्नड़को ही प्रान्तीय सरकारकी व्यावहारिक भाषा बनाना आदि आन्दोलनोंके सबल एवं सक्रिय समर्थक रहे हैं।

कविताके क्षेत्रमें तो आप हमारे कवि कुलगुरु हैं। आपकी प्रतिभा बहुमुखी है। गीतिकाव्य, खण्डकाव्य, महाकाव्य, आख्यानात्मक काव्य, गीति-नाट्य, जीवनी, समालोचना, गद्य-काव्य, कहानी, उपन्यास, बाल-साहित्य—आदि सभी क्षेत्रोंमें आपकी प्रतिभाका सम्यक् प्रस्फुटन हुआ है। अबतक आपने १८ कविता-संग्रह, एक खण्ड काव्य, एक महाकाव्य, सात गीति-नाट्य, दो जीवनीयाँ, एक बृहत् उपन्यास, दो कहानी-संग्रह, पाँच आलोचनात्मक ग्रन्थ तथा एक गद्य-चित्रका प्रणयन किया है। शंकिस्पयरके 'हैम्लेट' (Hamlet) तथा 'टेम्पेस्ट' (Tempest) का सुन्दर अनुवाद भी प्रस्तुत किया है। आपने कन्नड़के गीति-नाट्योंमें सरळरगळे (Blank Verse) का सफल प्रयोग किया है।

कविता करनेकी प्रेरणा आपको अपनी जन्मभूमि मलेनाडुसे मिली। बाल्यकालमें आपके कर्ण कुहरोमें पड़नेवाले लोकगीत, यक्षगान आदिने आपपर अद्भुत प्रभाव डाला है। कन्नड़के अतीव जनप्रिय कवि लक्ष्मीशकी नाद-मधुरी, कल्पना-वैभव आदिका आपपर अक्षुण्ण प्रभाव है। हाइस्कूलमें पढ़ते समय ही आपकी रुझान काव्य सर्जनकी ओर हो गई थी। अँग्रेजीके कीट्स, शैली, वर्ड्सवर्थ आपके प्रिय कवि रहे हैं। आपके जीवनपर मिलटनका प्रभाव तो बहुत अधिक है। हाइस्कूलमें ही अध्ययन करते समय आपने मिलटनके सब ग्रन्थोंका अध्ययन कर लिया था। अँग्रेजीकी स्वच्छन्द धाराके कवियोंके अनुकरणपर 'कुवेम्पु' जी अँग्रेजीमें कविता करने लगे। 'Beginners muse' नामसे आपका एक संग्रह भी छप चुका है। किन्तु आश्चर्यकी बात है कि 'कुवेम्पु' जीको मातृभाषा कन्नड़में काव्य रचना करनेकी प्रेरणा एक विदेशी भाषासे मिली। जे. एच. कसिन्स आपकी कविताओंसे प्रभावित हुए और उन्होंने आपको मातृभाषामें काव्य रचना करनेकी प्रेरणा दी। तबसे 'किशोर चन्द्रवाणी' नामक काव्य-नामसे 'कुवेम्पु' जीने सैकड़ों कविताएँ प्रकाशित कीं। आपकी प्रथम कृति 'अमलन कथे' एक आख्यानात्मक काव्य है। किन्तु 'कुवेम्पु' जीकी ख्याति उनके 'Pide piper' के अनुवादसे हुई। 'बोम्मन हळ्ळिम किदर जोगि' (Pide-piper) आज भी कर्नाटकके बालक-बालिकाओंके कण्ठ-कण्ठपर प्रतिष्ठित है।

नवनवोन्मेषिनी प्रतिभा एवं अप्रमेय कल्पना शक्ति-सम्पन्न होकर 'कुवेम्पु' जी ने तो काव्य-जीवनमें पदार्पण किया। किन्तु उनकी इस अगस्त्य प्रतिभाको सम्यक् मार्गमें सञ्चालित करनेके लिए एक मार्गदर्शक, गुरुकी आवश्यकता थी। सुदैवसे 'कुवेम्पु' जीको स्व. प्रो. बी. एम. श्रीकण्ठैय्याजी जैसे महानव्यक्ति गुरुके रूपमें मिले। बी. एम. श्रीकण्ठैय्याजी आधुनिक कन्नड़ साहित्यके जन्मदाता हैं। श्रीकण्ठैय्याजीके

आगमनके पूर्व कन्नड़ कविता गतानुगतिक कविताओंका एक वनखण्ड थी। सीमित विचारोंकी परिधिमें ही वह परिक्रमा कर रही थी। त्रिपदी, षट्पदी, पिरियवकर, सांगत्य आदि कन्नड़के छन्द तथा मत्तेभ, शार्दूल विक्रीडित, स्रग्धरा, मन्दानिल आदि संस्कृतके छन्दोंमें विजडित होकर कन्नड़ कविता निष्प्राण हो रही थी। ऐसी परिस्थितिमें प्रो. बी. एम. श्रीकण्ठैय्याजीका आगमन कन्नड़के लिए वरदान बना। उनके 'इंग्लिष पगीतेगळु' (१९२६) ने तो कन्नड़के नवयुवक कवियोंके समक्ष एक ज्योतिर्मय लोक ही उद्घाटित कर दिया। उसने क्या भाव, क्या भाषा—सबमें नूतन क्रान्ति ही उपस्थित कर दी। फलतः छन्दके विभिन्न बन्धन छिन्न-भिन्न हो गए। परम्परा जर्जरित श्रृंखलाएँ टूट गईं। सर्वत्र एक प्रकारका विद्रोह दिखाई दे रहा था। कन्नड़के नौजवान कवियोंने भी स्थूलके प्रति विद्रोह मचाकर सूक्ष्मका राज्य संस्थापित किया। बी. एम. श्रीकण्ठैय्याजीने उत्साही नवयुवक कवियोंकी एक मण्डली ही तैयार कर दी। 'कुवेम्पु' जी इस मण्डलीके प्रतिनिधि कवि बन गए। उन्हें प्रो. बी. एम. श्रीकण्ठैय्याजीसे योग्य मार्गदर्शन तथा योग्य प्रोत्साहन मिला। प्रो. बी. एम. श्रीकण्ठैय्याजीके शिष्योंने मिलकर 'तळिरु', 'किरिया काणिके' आदि जो कविता-संकलन प्रकाशित किए उनमें 'कुवेम्पु' जीकी कविताएँ ही अधिक हैं।

कन्नड़ काव्यके हिमवात पित्त-जीर्ण-शीर्ण काननमें नवयुगका वसन्त गायन करनेवालोंमें 'कुवेम्पु' जी भी एक हैं। प्रमुख रूपमें उन्होंने इसी काव्य-काननमें अपनी 'कोळलु' ('मुरली' १९३०) की तान छोड़ी। 'कोळलु' में सग्रहीत कविताएँ अपनी सुकुमार भावाभिव्यञ्जना, नाद-माधुरी, नवीन भाव आदिके कारण बहुत ही जनप्रिय बनीं। इनमें 'कुवेम्पु' जीका शिशु सहज कौतूहल है, प्रकृतिका नख शिख चित्रण है। सौन्दर्योल्लास इन कविताओंकी विशेषता है। सौन्दर्य 'कुवेम्पु' जीके लिए ईश्वरसे भिन्न वस्तु नहीं है। कीट्सकी भाँति इन्होंने भी गाया :—

चेलुवे देवरु, ओलवेपूजे;

एंबुदे रसजीवनदोजे।

[सौन्दर्य ही ईश्वर है, प्रेम ही पूजा है, यही रसमय जीवनका मर्म है, क्रम है।]

इस प्रकार कवि सौन्दर्य-पुजारी बनकर काव्य-जीवनमें पदार्पण करता है। पन्तजीकी भाँति प्रकृति 'कुवेम्पु' जीकी भी मौन निमन्त्रण दे देती है। वही प्रकृति 'कुवेम्पु' जीके लिए काव्य-देवी बनती है :—

मलेयनाड बनगळलिल

मुगुद बालनलेयुतिरलु

अरियदंते हेज्जेयिट्ट

बेन्न हिंदे नीनु बंदे

कळबदंगने !

हवुगळलि अडगि नीनु  
 करदे एन्ननु  
 तुंगेयल्लि मीयुतिरलु  
 अलेगळल्लि हुडुगि नीनु  
 मुनुकोट्टे केन्नेगळिगे  
 चेन्ने कवितेये ।

[ हे काव्य कन्यका, मलेनाडुकी अटवियोंमे जब यह मुग्ध बाल भटक रहा था। तब तू अनजानमें नीरव चापमें आकर मेरी पीठके पीछ खड़ी हो गई। कुसुमोंमें छिपे-छिपे तूने मुझे निमन्त्रण दिया। हे सुन्दरी, जब मैं तुङ्गा नदीमें नहा रहा था। तब तूने तरंगोंके रूपमे आकर मेरा चुम्बन किया। ]

कविताकी उपादान सामग्री भी उन्होंने प्रकृतिसे ही ली है; उसमे उनका शिशु-सहज कुतूहल लक्षित होता है:—

सुगिगय बनदि हसुरिन मेले  
 हवुगळददि केलवन आयदे ।  
 मंजिन मणिगळ मागियलीले  
 शोभिसलदरदि नितनु कोट्टे !  
 विपिन विहंगमकण्ठव सेरि  
 नुव्यरगळ गेददेनु बलु होरि ।  
 कामन बिल्लनु दारव माडि  
 मोळगनु, मिचनु, हनिगळ बेडि  
 हाडुगळनितनु कोदिहेनु !  
 तुंगेय तेरेगळ चुम्बनदिद  
 सिरिमलेनाडिन सिरि मडिर्लिद  
 कवनगळनितनु नेट्टिहेनु !

[ मैंने वसन्त काननकी हरीतिनासे, कुसुमोंके सुकुमार सौन्दर्यसे अपने काव्यकी सामग्री चुनी। तुहिन कणोंसे पूर्ण शिशिरकी सुषमा ली। विपिन विहंगमोंके कलकण्ठसे माधुर्य लिया। इन्द्र धनुषके सूत्रसे मैंने इन गीतोंकी माला बनाई है। तुगा नदीकी तरंगोंके चुम्बनसे, पर्वत प्रदेशके सुषमाभय क्रोड़से सामग्रियाँ लेकर कविताकी माला बनाई है। ]

सूर्योदय, चन्द्रोदय, इन्द्र धनुष, मेघमाला आदिपर रची कविताओमे यही सौन्दर्योल्लास दर्शित होता है। ' आलसियोंका गीत ' आदिमे एक प्रकारका पलायन-वादी दृष्टिकोण लक्षित होता है। कवि सौन्दर्य-सुधाका पान करते हुए जीवनकी जटिल एव कुटिल समस्याओंसे दूर रहना चाहता है:—

ई भरदडियल्लि  
गाळिय तंपिनलि  
नलियुव हसुरिनलि  
जीबव मरेयुव कोलुवि ।

[ इस तरुके तले मन्द-मन्द पवनकी शीतलतामें, सर्वत्र व्याप्त अखण्ड हरीतिमामे हम आमोद करेंगे मुरलीकीं स्वर माधुरीमें अपने जीवनको भूल जाएँगे, आत्मविस्मृत होंगे । ]

इन्हीं छायावादी कविताओमे रहस्य दर्शन, अज्ञातके प्रति कुतूहल आदि भी दर्शित होते हैं। शिशु कवि अर्ध चन्द्रभाको देखकर यह पूछ उठता है।

देवर पेःपरमेंटेनम्मा  
गगनदोळलेयुव चन्दिरनु ?  
एष्टे तिंदरु खर्वे आगद  
बेळैयुव पेप्परमेंटम्मा !

[ भाई, गगनमें विचरनेवाला यह अर्ध चन्द्र क्या ईश्वरकी ऐसी पेपरमेण्ट है जो कितनी ही बार खाई जानेपर भी पिघलतीं हीं नहीं, अपितु और बढ़तीं हीं है ? ]

पन्तजीकी भाँति 'कुवेम्पु' जी भी विहंग बालिकासे मीठे-मीठे गान सिखा देनेकी प्रार्थना करते हैं :—

बा बा ननगू हाडनु कलिसु  
बा बा ननगू हारलु कलिसु !

[ आओ, मुझे भी गाना सिखा दो न, मुझे भी उड़ना सिखा दो न ! ]

यह शिशु सहज कौतूहलपूर्ण प्रकृति प्रेम शनैः-शनैः आध्यात्मिक प्रेमके रूपमे परिणत होता है। 'सुन्दरम्' को 'शिवम्' के मन्दिरके रूपमें कवि अनुभव करने लगता है। कोई अज्ञात सत्ता प्रकृतिके कण-कणसे उनको मौन निमन्त्रण देने लगतीं है। स्वर्ग उनके पाँवोंमें ही उषाके रूपमें पड़ा रहता है। जहाँ सौन्दर्य है, वहीं स्वर्ग है, इस तथ्यकी अनुभूति होने लगतीं है :—

सगद बागिलु अल्लिहुदण्ण !  
नुगिदरस्ले तेरेयुवुदण्ण !  
हक्किम दुळिवयोळवित्तियेयण्ण,  
हुविन वण्णदोळडगियेयण्ण ।

[ स्वर्गका द्वार कहीं दूर किसी अज्ञात प्रदेशमें है क्या ? जहाँ दौड़ो, वही खुला मिलता है। स्वर्ग, विहंगोके कल-कूजनमे है कुमुमोंके रंगोंमे है स्वर्ग ! ]

पहले जो सौन्दर्य ऐन्द्रिक उल्लास बना था, कुतूहलकीं वस्तु बना था वही आगे आराधनाकी वस्तु बनता है और अन्ततोगत्वा कवि यह अनुभव करने लगता है कि प्रकृतिकी आराधना हीं परमकी आराधना है। यह विश्व हीं एक दिव्य

मन्दिर है। रवि, शशि तथा तारिकाएँ मन्दिरके दीपक है, कानन ही विकसित कुसुममाला है, ऊपरका नील गगन ही इस मन्दिरका गोपुर है, सागर तड़ाग तथा निर्झरिणियाँ ही प्रभुके अभिषेचनके जलपात्र हैं, सागर, सरोवरोंका सलिल ही तोय है, दिव्य कुसुमगन्ध ही धूप है, कोकिल आदि विहंगमोंका कल कूजन ही वाद्य है, हृदयका प्रेम ही धर्मशास्त्र है, दिव्य आत्म यज्ञ ही भक्ति है, हृदय पीठ ही ब्रह्मयज्ञशाला है। बृहत् ब्रह्मानुभव की विराट् पूजामें तल्लीन सन्त कविका प्रकृति प्रेम इस प्रकार विराट्की आराधनाके रूपमें परिणत होता है। सर्वत्र व्याप्त प्रकृतिमें प्रभुको खोजनेकी अपेक्षा मन्दिरोंमें, शास्त्र ग्रन्थोंमें खोजना कितनी मूर्खता है !

बाँसकी झाड़ियोंमें मलय मारुत अपनी जन्मभूमिकी कहानियाँ सुनाते हुए भटक रहा है, ऐसे दिव्य सौन्दर्यमें 'गीता' ( भगवद्गीता ) का ज्ञान भी हमें प्राप्त होता है। मेघोंपर विराजनेवाली लालिमा हमको पण्डितोंके सारे पाण्डित्यका बोध करा रही है, पाण्डित्यका भी अतिक्रमण करनेवाला आनन्दभाव कर रही है तथा यह घोषणा कर रही है कि सौन्दर्यमें ही 'शिव' है। हे बन्धु, इस निश्चिन्तताके आनन्दमें डूबने आ, तिरने आ, पिघलने आ, इधर परमात्माका साक्षात्कार करो न ! आ, बाहर अपने घर छोड़कर इस मोहमयी सन्ध्याके रूपमें प्रकट परमात्माका दर्शन कर !

'कोळु' कविता संग्रहमें इसी प्रकारकी प्राकृतिक कविताएँ हैं। प्रकृतिमें तादात्म्य स्थापित करनेके साथ अज्ञातकी अनुभूति भी होती रहती है। यहीं अनुभूति 'कला सुन्दरी' ( १९३३ ई. ) में संग्रहीत कविताओंमें भी दर्शित है। 'सर्व सम्बन्धी 'खल्वदं ब्रह्म' वाली उक्ति कविके जीवनमें अनुभूति बनती है। अतः वह तरु-गुल्मोंको, खग-मृगोंको प्रणाम करता है :—

तर्षसिगळरिभवे, साधिसि बयसुष  
सत्थद नेलेयनु बडकडिगमिगे  
ओल्मेय दानव माडिदिरि !  
हिदेयु नेचिंवे, मुंवेयु नेचुवे,  
मार्गदाशिगळु नीवेमगे ।  
देवन रूपव काणुवे निम्मलि,  
देवन वाणिय केळुवे निम्मलि,  
निम्मनुभवदलि शिवननुभवविदे,  
देवन प्रतिनिधिगळु नीवु !  
तरुगळे, सुमगळे, मृगगळे, खगगळे  
निमगिदो नमिसुवे भक्तियलि !

[आप लोगोंने मुझ जैसे दीन कविको उस तत्वके मूलका बोध कराया, जिसे ढूँढ़-ढूँढ़कर तपस्वी जन भी थक गए और 'नेति-नेति' कह गए। इसके पूर्व ही मैंने आपपर श्रद्धा रखी, भविष्यमें भी आपपर मेरी श्रद्धा रहेगी। आप हमारे मार्ग-

दर्शक है। मैं आपमें ईश्वरका रूप ही देख रहा हूँ, आपकी वाणीमें प्रभुकी वाणी ही सुन रहा हूँ। आपके अनुभवमें शिवका अनुभव है, आप ईश्वरके प्रतिनिधि हैं। अतः हे तरुओ, सुमनो, मृगो, खगो, आपको शत्-शत् बार मेरा नमन हो ! ]

‘पक्षिकाशि’ ( १९४६ ई.) में संग्रहीत कविताओंमें इसी भावकी परिणता वस्थाको हम देख सकते हैं। ब्रह्मचैतन्यवादी कवि जीव चैतन्यवादी बनकर सर्वत्र चैतन्य ही चैतन्य देखता है। निरीक्षण एवं परीक्षणोंसे विज्ञान जिस सत्यका निर्णय करता है; वहीं कवि भी अपनी अनुभूति द्वारा प्राप्त करता है। रास्तेका एक प्रस्तर-खण्ड भी; उससे चैतन्यकी जगमगती ज्योति सी दिखता है :—

चेतन मूर्तियु आ कल्लु;

तेगे जडवेबुदु बरि सुळ्ळु !

[ चैतन्यमूर्ति है वह प्रस्तरखण्ड, छोड़ो, ‘जड’ नामक वस्तु ही निरी मिथ्या है। ]

‘पक्षिकाशि’, ‘अग्निहंम’ ( १९४६ ) आदि कविता-सकलनोंमें ‘कूवेम्पु’ जीकी रहस्यवादी गीता संग्रहीत है। प्रकृतिके ससंगसे जो दिव्यानुभूति हुई, जो विराट् दर्शन प्राप्त हुआ वह अनुभवगम्य है। कवि अपनी अनुभूतिको व्यक्त किए बिना भी नहीं रह सकता। इस उभय सकटकी क्या ही मार्मिक व्यंजना है :—

हेळिदरे हाळ्ळागुवुदो ई अनुभवद सवियु;

हेळिदरे ताळ्ळारनो कवियु !

×

×

×

ओलुमेयपुगेयंते एनलु साधारण;

योगिय समाधि एने अति अपूर्व;

कविय रसरति एनलु कविगोर्वनिगे वेद्य;

मृत्यु माधुर्य मेने बडुकिहरिगरिदय्य !

[ यदि मैं व्यक्त करूँ तो, मेरे अलौकिक अनुभवका म्वाद मिट जाएगा यदि न बताऊँ तो कवि उस अलौकिक एव असह्य वेदनाको सह नहीं सकता। ]

×

×

×

[ यदि यह कहूँ कि वह प्रेमके आलंगनकी भाँति है, तो वह अनुभूति नितान्त साधारण बन जाती है। योगीकी समाधि कहूँ, तो वह अत्यन्त अपूर्व बन जाती है। कविकी रस-रति कहूँ, तो वह केवल कविमात्रके लिए वेद्य है। मृत्युमाधुर्य है एसा बताऊँ तो जीवित व्यक्ति उसे समझ नहीं पाते। ]

कवि ‘कूवेम्पु’ ‘सत्यम्’ एवं ‘सुन्दरम्’ में कोई भेद ही नहीं देख सकता है। संसारकी झण्टोंसे दूर रहकर प्रकृतिकी आराधनामें तल्लीन कवि बाह्य जगतमें आकर देखता है तो दग रह जाता है। उसे यह अनुभव होने लगता है कि संसारमें सर्वत्र दुःख ही दुःख व्याप्त है ! उसके कारणकी मीमांसा भी करके देखता है कि सौन्दर्य चक्षुका अभाव ही इसका कारण है। रोज सूर्योदय होता है, चन्द्रोदय

होता है, मन्द-मन्द गन्धका आगमन होता है। कुमुम कोरक खिल पड़ते हैं, मधुमास विधिहासकी भाँति आता है, खगकुल आनन्दित हो गा रहे हैं, किन्तु इन सबके बीच मानव अशान्तिके कूपमे गिर रहा है :—

**सोबगना स्वादिसलु समयवे आगिल्ल,  
नभ नीलवनु नोडि बेरगापरल्ल !**

[सौन्दर्यका आस्वादन करनेके लिए हमे समय नहीं मिल रहा है, हम व्यस्त हो गए हैं। नभ नीलिमाको देख पुलकित होनेवाला कोई नहीं है !]

किन्तु इसी बीच कविकी कल्पना झूठी लगती है। स्वप्नदृष्टा कविका स्वप्नसौध वास्तविकताके आघातसे चकनाचूर हो जाता है। उसके आदर्श एव मूल्य विश्रुंखल हो जाते हैं। 'मुरली' की तान छड़नेवाला, 'कलासुन्दरी' के कोमल क्रीडमें क्रीड़ा करनेवाला, सृष्टि सौन्दर्यको देखकर मयूर बन नाच उठनेवाला कवि पाञ्चजन्य-पाणि बनता है। उसकी बाँसुरी फटकर भेरी बनती है, उसकी लेखनी खड्ग बनती है :—

**कब्बिगन लेखनियु  
कठारियागुतिरुवुदु !  
इंचरव कोळलु बिरिदु  
कठोर भेरियागुतिदे !**

[कविकी लेखनी कुठार बन रही है, माधुर्य-वर्षिणी मुरली फटकर भेरी बन रही है।]

जिस हाथने मुरली धरी थी वही आज पाञ्चजन्य फंकेने चला है। दीन, दलितोंकी, पतितोंकी परिस्थितिको देख कविकी पीयूषवर्षिणी वाणी कालकूटकी वर्षा करने लगती है। वह बड़े-बड़े साम्राज्यको इस प्रलय प्रभञ्जनमे मिट्टीमे लोटते देखता है। कवि मूक श्रमजीवियोंकी वाणी बनकर मेघ-गर्जना करता है। उसकी वाणीमें निर्जीव जड़में चैतन्यका स्फुलिंग भरनेकी शक्तिका समावेश हो जाता है।

श्रावण मासके सन्ध्या समीरणसे कवि जीवनकी सब जीर्ण-शीर्ण विगलित परम्पराओंका ही नाश कर नवजीवन बरसानेकी प्रार्थना करता है :—

**कडलौडलिन बडबागिनय रौद्रव  
नम्मोडललि केरळिसिबार !  
सुळिगाळिगे भोगरेव समुद्रव  
नम्मेदेगळलुहळिसि बार !  
मुगामोळगनु गुडुगनुमिचनु  
नम्मेदेगूडुत नी बार !  
विप्लव मूर्तिय कळ्ळोळसंचनु  
तुत्तूरियूडुत नी बार !**

श्रावण सन्ध्यासमय समीर !

स्वागत, बारा ! धीरर धीर !

[ सागरके गर्भमे स्थित बड़बाग्निके रुद्र रूपको हमारे हृदयोंमे भी प्रेरित करते हुए आओ न ! प्रभञ्जनाक्रान्त प्रक्षुब्ध सागरको ही हमारे हृदयोंमें उँडलते हुए आओ। वर्षा ऋतुके घनगर्जनको, आकाशकी घुमड़को, वज्र रवको हमारे हृदयोंमें पिलाते आना। विप्लवमूर्तिके षडयन्त्रके द्वारा, तूर्यघोष करते हुए आओ न। हे श्रावण के सन्ध्या-सर्मार तुम्हारा स्वागत है !

जीवनकी विषमताके कारण सर्वत्र क्रान्तिका रक्त प्रवाह आ रहा है। उसकी भीषणता देखिए :—

बरतलिदे ! बरतलिदे !

विप्लवद रक्तधुनि,

नोडु, हरिदु बरतिदे !

बेनेवसिरिनिद चिम्मि

दास्य शिलेयनोडेडु होम्मि,

श्रीमंतर कोळक बिच्चि

हळतनेल्ल कोच्चि कोच्चि,

नोडु नुगि बरतिदे !

मरणदंते मौनवागि

विलयदंते रुद्रवागि

गुडुगनुळिद सिडिलिनंते

होळेव मिचिनुदाधियते

काळि तेरेद जिह्वेयंते

तरुणरक्तदरुण नदि

विप्लवद रक्तधुनि

बरतलिदे ! बरतलिदे !

नोडु ! नोडु ! बरतिदे !

[ वह विप्लवका महापूर (बाढ़) आ रहा है। उमड़-उमड़कर बहता आ रहा है वेदनाके हृदयसे उद्भूत हो आ रहा है, दास्यशिलाको चकनाचूर कर आ रहा है, वह बाढ़ धनवानोंकी सड़ी-गली वस्तुओंको उद्घाटित कर, उनकी पोल खोलते आ रही है, पुरानी सड़ी-गली वस्तुओंको नष्ट भ्रष्ट करते हुए, दौड़ी आ रही है। मरणकी भाँति मौन हो वह आ रही है, विलयकी भाँति रौद्र बनी आ रही है, शब्दशून्य वज्रपातकी भाँति, आँखोंको चौधियानेवाली विद्युत की उदधिकी भाँति, कालीकी लोल-लोल जिह्वाकी तरह तरुण रक्तकी अरुण नदी विप्लवका रक्त-प्रवाह बनी आ रही है। आ रही है, देखो न ! ]

‘विप्लव मूर्ति’ ‘काली आ रही है’ आदि कविताओंमें भी इसी प्रलयंकारी आगमनका भीषण वर्णन है। इन सबको देखकर कवि कैसे कल्पनाकी उड़ानमें उड़ते एकान्त संगीतमें निमग्न रह सकता है! ‘वसन्त’ वनको छोड़कर जीवनकी कठोर भूमिपर विचरने लगती है। युग चेतनाकी पुकार अनसुनी नहीं कर पाता है, वह भी विप्लवमूर्तिका सखा बनता है, विप्लव मूर्ति ही बनकर विप्लव गायन करने लगता है :—

विप्लव मूर्तिय सखनागिहने,  
कविगरमु गिरसुगळ ऋणविल्ल !  
अवनग्निमुखि !  
प्रलयशिखि !

[आज वह (कवि) विप्लव मूर्तिका सखा बना है। कवि राजा महाराजाओंके ऋणपर नहीं जीता, वह अग्निमुखी बना है, प्रलय शिखी बना है। उस अग्नि-मुखीकी वाणीमे नवीन जीवनका ज्योतिर्मय सन्देश है।]

‘होसबाळिन गीते’ (नवजीवनका गीत) मे युग-वाणीकी कितनी मार्मिक व्यंजना है !

सर्वरिगे समबाळु ! सर्वरिगे समपालु !  
एंब नवयुगजाणि घोविसिदे केळि !  
× × ×  
इन्द्रसिंहासनके बंडिहुदु कोनेगाल ;  
कळचि बीळुवुदिदु नंदनद वेलि !  
देवतेगळ श्लीलमोदके बदलागि  
गोचरिपुदल्लि मर्त्यर कृषिय केलि !  
द्रव्यानुकूलतेय जातिया नीतिया  
पक्षपातवनेल्ल कोचवुवुदु बुद्धि ;  
मत्तोदु नाकवने नेय्युवर लोकदलि  
देवरन्यायबनु मानवरे तिद्धि !

[‘सबका समान जीवन, सबका सम भाग !’ इस प्रकारकी नवयुग वाणी घोषित हो रही है, सुनिए।]

× × ×

[इन्द्र-सिंहासनका अवसान-समय भी समीप आ गया है। नन्दन काननकी मेंड़ टूटकर गिर रही है। उधर देवताओंके अश्लील आमोदके बदले मर्त्योंकी कृषिकेलि गोचर होती है। आजकी बुद्धि द्रव्यानुकूलता, जाति, नीति सबके पक्षपातका नाश कर रही है। देवताओंके द्वारा किए गए अन्यायको मिटाकर मानव समाज ही आज एक नूतन स्वर्गकी सृष्टि करेगा।]

‘कल्कि’ ‘कुवेम्पु’ जीकी सर्वश्रेष्ठ प्रगतिवादी कविता है, स्वप्नमें ‘कल्कि’ के आगमनको देखकर कविकी नीद उचट जाती है, उसका स्वप्न टूट जाता है। किन्तु कल्किका भीषण चित्र वर्तमान दारिद्र्य एव अन्यायकी विभीषिकाका चित्र है, भविष्यमें होनेवाली क्रान्तिका चित्र है।

इस प्रकार युग-चेतनाको पहिचानकर कविकी लेखनी भी कठोर करवाल बनी। ‘कुवेम्पुजी’ ने कन्नड़की प्रगतिवादी कविताको सचमुच आत्मदान दिया है।

प्रत्येक कवि युग-प्रसूत है। युग विशेषकी वाणीको, अवसाद एवं विषादको वह अनसुना नहीं कर सकता। राष्ट्रीयताका प्रभञ्जन उसे भी झकझोरता है और कविकी वाणी राष्ट्रीय जागरणमें तूया बनती है। कवि घोषणा करता है कि राष्ट्रदेवीके समक्ष अन्य देवता है हीं नहीं, उठो, उसका उद्धार करने आओ:—

**नूरु देवरनेल्ल नूकाचे दूर**

**भारतांबेये देवि नर्मांगिदु पूजिसुव वार !**

[सैकड़ों देवताओंको आज बाहर ढकेल दो, आज भारत जननी ही हमारी आराध्य देवी है, आओ हम उसकी पूजा करे।]

‘पाञ्चजन्य’ नामक कवितामें कवि भारतीयोंको स्वातन्त्र्य संग्राममें कूदनेका आमन्त्रण देते हुए कहता है:—

**भरतखंडदहितवे**

**नन्न हित एंडु,**

**भरत मातेय मतवे**

**नन्न मत एंडु,**

**भारतांबेय मुक्ति**

**मुक्ति ननगेंडु,**

**नुग्गु मुदके धीर ।**

[भरत खण्डका हित हीं मेरा हित है, भारतमाताका मत हीं मेरा मत है। भारतमाताकी मुक्ति हीं, मेरी मुक्ति है—इस प्रकार समझकर हे वीर, आगे बढ़ो।] हुतात्माओंको श्रद्धाञ्जलि देते हुए कवि उनको रक्त तर्पण देनेके लिए जनताको निमन्त्रण देता है।

हुतात्माओंको रक्त तर्पण देकर अपना ऋण चुकाइए। आज आमोद-प्रमोदका दिन नहीं है। आज कारागारमें हीं क्यों न जाना पड़े, मृत्यु हीं क्यों न आए, हम हृदयके उष्ण रक्तका तर्पण देकर हुतात्माओंकी आशाको पूरा करेंगे।

‘कुवेम्पु’ जीके राष्ट्रीय गीतोंमें एक ओर भारतकी गत गरिमाका चित्र है तो दूसरी ओर वर्तमान क्लैव्यके प्रति विक्षोभ भी।

युगवाणी एवं युगचेतनाको पहिचानकर कविने तो प्रगति गीत रचे, किन्तु यह कविकी महत्वपूर्ण कविताएँ नहीं हैं। कवि मार्क्सवादकी हिंसक मनोवृत्तिके प्रति

अनास्था व्यक्त करता है। मार्क्सवादी दार्शनिक नीरसतासे कवि परितोष नहीं पा सका। कवि अनुभव करता है कि मार्क्सवाद भारतीय संस्कृतिके लिए, भारतीय वायुमण्डलके लिए अनुपयोगी है। मार्क्सवादपर कविने 'कोयल, और सोवियत-रूस' नामक कवितामें सुन्दर व्यंग्य किया है। गान्धीजीके सर्वोदयके प्रति कविकी हार्दिक श्रद्धा है। वह मानव-मानवको प्रेमकी समान भूमिपर विचरते देखना चाहता है। मत-मतान्तरोंके कारण विश्वमें अनेक युद्ध-क्रान्ति आदि हुई है।

जीव-चैतन्यवादी बनकर कवि मानव देवकी पूजा करनेकी प्रार्थना करता है। 'मोदल देवस ई हृषमुदुकि' (यह वृद्धा प्रथम देवता है) वाली कवितामें मानवता-वादकी सुन्दर अभिव्यक्ति है :—

मोदलने देवरई हृषमुदुकि  
नीडज्जिगे भिक्षे !  
बाळीकेगे साकागिदे ब्रुकि;  
जीविसुवुदे शिक्षे !  
नेत्तिय देवतिगेनेंतिरलि;  
मोरलज्जिय मनकिपैतरलि ।

[यह वृद्धा प्रथम देवता है, इस नानीको भिक्षा दो। वह जीवनसे बाज आ गई है। जीवित रहना ही उसके लिए एक दण्ड बन गया है। ऊपरके ईश्वरकी पूजा रहने दो, पहले इस बूढ़ी नानीको सन्तुष्ट करो।]

कवि विश्वकी आधुनिक गति-विधियोंकी ओर जब दृष्टिपात करता है तो देखता है कि ज्ञान-विज्ञानकी अद्भुत प्रगति तो हो रही है, किन्तु मानव-मस्तिष्कका दास बना, अपने हृदयको खो रहा है। 'शतमान सन्ध्ये' नामक कवितामें इसकी यथार्थ वेदनाकी अभिव्यक्ति है :—

नोण मीसेय हुळु हेज्जेय  
एणिमुव बिज्जेय बल्ल;  
तन्नात्मव तानरियुव  
साधनेयेंदनुओल्ल !  
अन्वेषणे ! अन्वेषणे !  
सुखिस दु पुरसत्तिल्ल !  
तिळिदू तिळिट्तिळिदू  
कडेगेनू गोत्तिल्ल !

[मानव विज्ञानके क्षेत्रमें आज आश्चर्यजनक प्रगति कर रहा है। उसने मक्खियोंके पैरोंके बालोंको, कीड़ोंकी पदचापको गिनना सीखा है, वह कृमि-कीटोंके पदचापको गिन सकता है। कितनी विडम्बना है कि वह अपनी आत्माको नहीं क. कन्नड़ कु.—४

जानता है। अन्वेषण। केवल अन्वेषण! बस, शान्तिसे सॉस लेनेके लिए भी उसे फुरसत नहीं मिल रही है। जान जानकर भी अन्तमें वह अज्ञानी ही सिद्ध हो रहा है। ]

‘सभ्यता देवते’ नामक कवितामें गौंधीवादीकी महिमाका वर्णन करते हुए कवि बताता है कि एक समय था, जब कि मानव वैचित्र्यको ही ईश्वर मानकर आराधना करता था, मत्स्य, कूर्म आदिकी पूजा कर रहा था, राजदर्पमें, अधिकारमें, क्रूरतामें, शक्ति, बल, युक्ति, एश्वर्य तथा अहंकार में देवत्वको देखता था। किन्तु आज वह समय नहीं रहा है। मानवके अभ्युदय तथा श्रेयके लिए अपने जीवनका ही होम करनेवाले, त्याग करनेवाले ईसाई, बुद्ध आदि मनुज तनुजोंको ही देवता माननेका समय आ गया है। ऐसी ऋजु दृष्टि प्राप्त करनेके लिए मानव जातिको तीन युगोंकी प्रतीक्षा करनी पड़ी और कलियुगको आना पड़ा। अतः धन्य कलियुग तुझे शत-शत प्रणाम हो !

संसारमें कितने साधु-सन्त आए, महात्मा आए. पीर-पैगम्बर आए किन्तु उनका प्रभाव नहीं जैसा है। संसार अशान्ति-कूप ही बना है। राष्ट्र-प्रेम विश्व-प्रेमके सामने क्षुद्र है, सर्कीर्ण है। और वहीं आजकी विश्वशान्तिके मार्गमें रोड़ा बनकर अटक रहा है। अतः कवि अपनी चेतनासे प्रार्थना करता है कि वह प्रान्तीयता, राष्ट्रीयता विभिन्न मत-मतान्तरोंको परिधियोंको लेकरके बन्धनोंको पारकर निर्दिगन्त बने अनिकेतन बने, मानवताके अपार सागरमें अपार हो कर रहे।

ओ नम्र चेतन,  
आगु नो अनिकेतन !  
नरु मतद होट्ट तूरि,  
एल्ल तत्त्वदेल्ले मीरि,  
निर्दिगतवागि एरि

ओ नम्र चेतन,  
आगुनो अनिकेतन !

[ हे मेरे चेतन, तुम अनिकेतन बनो, सैकड़ों मत-मतान्तरोंके धर्मोंकी फट-कनियोंको धूलमें उड़ाकर, सभी तत्त्वोंकी सीमाओंको अतिक्रान्त कर, निर्दिगन्त बने ऊर्ध्व भूमिपर विचरो ! हे मेरे चेतन, तुम अनिकेतन बनो !! ]

‘कुवेम्पु’ जीका वर्तमान कवि आत्मचेतना एव युगचेतनाकी सोपान-श्रेणियोंको पारकर ऊर्ध्व-चेतना पर आरोहण कर बैठा है। उनकी योग-महिमासे अखण्ड प्रकृति ही एक विराट काव्य बनी विराज रही है—

काननगळे गानमागि  
तान तान मूडिचे !  
तेरे तेरे मले होळे तोते  
मूडुतिहवु रागदि !

पर्वतगळें पदगळते  
गानगोंडु गेयमागि  
नुरगुतिहवु वेगदि !

नाळ नाळ नाळइल्लि  
बिंदु बिंदु नेत्तरल्लि  
कंदराद्रि विपिन पंक्ति  
स्पंदि सुतिवे योगदि !

[अखिल कानन ही गान बने तान छड़ रहे है। तरंग, तुंग पर्वत, नदी, निर्झरिणी आदि रागसे पुलकित हो रहे है। पर्वत ही पद बने गा-गाकर गेय बने आगे प्रचण्ड वेगसे घुस रहे है। नाल नालमें रक्तकी प्रत्येक बूँद, कंदरा, अद्रि, विपिन पंक्ति आदि योगमे स्पन्दित हो रहे है।]

‘जेनागुवा’, ‘इक्षुगगोत्रि’ आदि कविता-संकलनोंमे उनकी नवीन दार्शनिक कविताएँ है। ‘पक्षी’, ‘ऋत चिन्मयी: जगन्मातेग’ आदि उनकी चैतन्यवादी कविताएँ है। ‘कृत्तिके’, ‘अग्निहस’ आदि कविता-संकलनोमे आध्यात्मिक गीत है।

अब हम ‘कुवेम्पु’ जीकी महान् कृति ‘रामायण दर्शन’ महाकाव्यका थोड़ा परिचय देनेका प्रयास करेगें। ‘रामायण दर्शन’ कन्नड़ काव्यके कीर्ति मन्दिरकी स्वर्ण-पताका है। बीसवीं शताब्दीके भारतीय साहित्यकी महान् कृतियोंमें एक है। आदि कवि वाल्मीकिके पश्चात् भारतकी विभिन्न भाषाओमे असंख्य रामायणोकी रचना हुई है। किन्तु ‘कुवेम्पु’ जीकी रामायण एक नूतन सृष्टि है; वह केवल राम-रावणकी कथा नहीं है:—

बहिर्घटनेयं प्रतिकृतिसुवा लौकिक  
चरित्रेयलितदु, अलौकिक नित्य सत्यंगळं  
प्रतिभिसुव सत्यस्य सत्य कथनं कथा।

[बहिर्घटनाओंकी प्रतिकृति लौकिक इतिहास नहीं है। यह रामायण, बल्कि अलौकिक नित्य सत्योंकी प्रतिमा विधानमें व्यक्त करनेवाला ‘सत्यस्यसत्यकथनम्’ है।] रामायणके अन्तमें भी कवि कहता है:—

इतिहासमलतु; बरिक्थेमलतु; कथे तां  
निमित्त मात्रं, आत्मके शरीरदोलंते।  
मेटवेत्तुरिल्लि रामन कथेय पंजरदि  
राम रूपद परात्पर पुरुषोत्तमन  
लोकलीलादर्शनं।

[यह इतिहास नहीं है, निरी कथा नहीं है, कथा तो निमित्त मात्र है। आत्माके लिए जिस प्रकार शरीर है उसी प्रकार रामकथा रूपी कंकालमें राम-स्वरूपी परात्पर पुरुषोत्तमका लीला दर्शन ही काव्य बना है।]

‘रामायण दर्शन’ अन्नमय कोशसे आनन्दमय कोशतककी जीवकी पारि-  
णामिक यात्राका रम्य एवं उज्वल इतिहास है। अयोध्या सम्पुट, किष्किन्धा सम्पुट,  
लंका सम्पुट एवं श्री सम्पुट—इस प्रकार यह काव्य चार भागोंमें बाँटा गया है। मनोमय  
प्रतिमा अयोध्यासे परित्यक्त श्रीरामचन्द्रका आगमन प्राणमयकी प्रतिमा किष्किन्धा-  
में होता है, राम उधर ऊर्ध्व गमनासक्त सुग्रीवकी सहायता करते हैं उस सत् शक्तिका  
विरोधी बालि रूपी तम शक्तिका नाश करता है। सुप्त चित्तके गुप्त तिमिर अन्नमय  
भूमिका रूपी रावणकी कारामें बद्ध सीता रूपी चैत्यसे प्रज्ञाको लाता है। उस चैत्य-  
सम्प्रज्ञाको पाकर उधर ही नहीं रह जाना चाहिए; उसके ज्ञानसे उस पार और इस  
पारका सेतु निर्माण करना है। तब श्री अरविन्दके प्रतिमानसकी प्रतिष्ठापना होगी।  
इस प्रकार रामचन्द्र उस पार तथा इस पारके बीच सेतु निर्माण करनेवाला अति-  
मानव ( Superman ) है। अतः अयोध्या सम्पुट मनोमय भूमिकाका प्रतीक  
है, किष्किन्धा सम्पुट प्राणमय भूमिकाका प्रतीक है। श्री सम्पुट विज्ञानमय तथा  
आनन्दमय भूमिकाओंका प्रतीक है :

**मनोमयं प्राणमयमन्नमयदा प्रतिमेगळ्  
मानवते वानरते वैत्यतेगळ् दांडुबोल्  
संपुटमयोदयेयं किष्किन्धेयं लंकेयं  
दांदि, विज्ञान दृष्टिय पूर्णरसकेवंबोल्**

[मनोमय, प्राणमय, अन्नमयकी प्रतिमाएँ मानवता-पशुता तथा असुरताको  
जिस प्रकार अतिक्रान्त करती है, उसी प्रकार अयोध्या किष्किन्धा तथा लंका सम्पुटोंको  
पार कर विज्ञान दृष्टिकी पूर्ण रस प्रज्ञा पर आरूढ़ होता है। इस प्रकार रामायण  
अन्नमय पुण्यके आनन्दमय पुरुष बननेका इतिहास है। अतः ‘कुवेम्पु’ जीका कथन है  
कि रामायण रामसे भी प्रार्थान है, महान है।]

चरित्र-चित्रणमें भी कुवेम्पुजीने नवीन उद्भावनाएँ की हैं। ‘काव्येर  
अनादर’ का निराकरण किया है। उनकी उर्मिला गुप्तजीकी उर्मिलाकी भाँति  
तपस्विनी बनी है, उसके वेदना-निवेदनोंसे सारा काव्य मुखरित है। उसकी मौन  
तपस्यासे समग्र काव्य पूत बना है। उसका सन्देश ‘तन्न तान् इल्ल गैवुदे एल्ल  
साधनेगे कोनेयगुरि’ (अपने आपको ‘नाहीं’ में परिवर्तित करना ही सब प्रकारकी  
साधनाओंकी परम परिणति है।) भारतीय संस्कृतिका सार भर्म है। कैकेयीका चरित्र  
भी पाठकोंकी अज्ञ सहानुभूति का पात्र बना है। मन्थरा ‘कुवेम्पु’ जीकी एक नूतन  
सृष्टि है। वह समग्र रामायणकी केन्द्र—बिंदु है, रामायणका कारण नही कारण है।  
साकेत मात्रमें सीमित रह जानेवाली महाशक्तिको बहिर्जगतमें ले जानेवाली प्रेरक  
शक्ति है। अतः उससे जो लोकसेवा हुई वह अद्भुत है। कुवेम्पुजीका रावण  
भारतीय साहित्यके लिए ही एक नूतन देन है। राम और रावण अंक ही सत्यके

रूपान्तर मात्र है। एक आनन्दमय भूमिकामें रहनेवाला जीव है तो दूसरा मनोमयक जीव है। राम एक ओर कहता है—

नाने अवनल्लदिरे आदहाप्रीवंगदेन्  
सीतेयस्रोतिवुदुं, भेणकळनुखुदुं,  
केळ, मोगें

[ मैं हीं रावण हूँ, नहीं तो सीताके प्रति मोह तथा उसका अपहरण उससे कैसे सम्भव हो सकता था ? राम अपने ब्रह्मास्त्रके रूपमे रावणके हृदयमे प्राणरूपमें प्रवेश करते हैं। रामके प्राणको पाकर रावण 'सेरे सिल्किदनो वैरि तिरुगिमु वरुथमे' (बैरी बन्दी बन गया है, रथको मोड़ो) कहकर लंका लौटता है। उस बाणको निकालनेके पश्चात् रावण मर जाता है तो उधर रणभूमिमें श्रीरामचन्द्रकी स्थिति देखिए :—

कूडे, कपिसमिति घे घे एनुते कुविदाडे,  
मंदोर्दुदत्तला रघुकुलोत्तमचित्त  
पर्वतद चूडमं मुत्तिदं कत्तलेय  
कडलिर्नाचिनलि चैतन्य चन्द्रोदयं ॥

उधर कपि समूह रणभूमिमें 'उघे' 'उघे' कहकर चिल्ला रहे हैं। रामचन्द्रके चित्तपर्वतपर एक प्रकारका अन्धकार जो छा गया था, उसके तीरपर चैतन्य चन्द्रोदय होता है। रावणके मरनेपर तमस निकल गया, शुद्ध सत्व मात्र रह गया। मायाकी प्रवञ्चनानें आ जानेवाली सीता अपने माया निरसनके कारणकर्ता—रावणके प्रति कृतज्ञता समर्पित करती है। . . . "नानु मा भयन भगळ्ठाण मंगे। कृतज्ञे दल ! " में भी उस मयनन्दनावल्लभके प्रति कृतज्ञा हूँ। रावणके द्वारा अपहृत होकर कष्ट संकटोंका अनुभव किए बिना उसका माया निरसन नहीं हो सकता था। काञ्चनमृगपर उसका मन मुग्ध हो गया। परन्तु इस मायाको निकालनेमें उसे अनन्त कष्ट सहने पड़ते हैं। ('कुवेम्पु' जीके रावण और कुम्भकर्ण ही सीताके गर्भमें लव-कुशके रूपमें जन्म लेते हैं। इस प्रकार दुर्गके वरसे रावण सीताको माताके रूपमें प्राप्त करता है।) अवरोहण क्रमसे आनन्दमयसे अन्नमय कोशोंमें विचरनेवाला भी वही परम तत्त्व है जो आरोहण क्रमसे स्वस्थान जाकर आनन्दमे लीन हो जाता है। हनुमान एक अतिमानवके रूपमें भू लोक एवं स्वर्गलोकको मिलानेवाली अद्भुत एवं शाश्वत शक्तिके रूपमें चिह्नित है। तुलसीदासकी भाँति 'कुवेम्पु' जीने भी विवाहके पूर्व सीता-रामको प्रथम मिलनका मार्मिक चित्रण प्रस्तुत किया है। 'कुवेम्पु' जीने रामायणके लिए एक अपना छन्द 'महा छन्दस्' निमित्त किया है। बीस मात्राओंवाले उस अमित्राक्षर छन्दमें अद्भुत गति है, मिल्टनका-सा ओज है। महोपमा ( Homeric similes ) एवं सम्मूर्तनोंसे ( imageries ) यह काव्य ओतप्रोत है। संस्कृत भूमिष्ट अतः कोमल पदावलीके कारण उनकी शैलीमें एक प्रकारका गाम्भीर्य है। 'कुवेम्पु' जीकी रामायणने कन्नड़-काव्य-वाहिनीको सागरकी-सी विशालता एवं गाम्भीर्य दिया है;

आत्मदान दिया है। कुवेम्पुजीकी कविताओंकी विशेषता है, उनका अदम्य उत्साह। उनके काव्यमें उत्साहकी बाँसुरी बजती है, कल्पनाका मयूर नाचता है। 'कुवेम्पु' जी प्रधानतः गीतकार है। वर्तमान कन्नड काव्य शैलीके दो मार्ग हैं:—एक सरल प्रसादपूर्ण व कन्नडके अपने शब्दोंका प्रयोग जिसे हम 'देशी' कह सकते हैं; दूसरा संस्कृत शब्द भूयिष्ठता, गाम्भीर्य एवं नादमाधुर्यसे मण्डित मार्ग। 'कुवेम्पु' जी इस द्वितीय मार्गके अद्वितीय साधक तथा प्रवर्तक हैं। ओज एवं गति, भाव-गाम्भीर्य अर्थ-भव्यता एवं भाषाकी प्रौढ़ता आदि उनकी शैलीकी विशेषताएँ हैं।

'कुवेम्पु' जी पर व्याकरण दोष, क्लिष्टता आदि दोष लगाये जा रहे हैं, विशेषतः संस्कृतके शब्दोंके प्रयोगमें। कभी शब्द माधुरीके पीछे पड़कर अर्थ-दुरूहता आ गई है। किन्तु उनकी बृहत काव्य राशिमें ये दोष नगण्य हैं। टनिसनके शब्दोंमें हम भी कह सकते हैं:—

However mistakes he may be, he has given our language another heart and a new pulse and so has kept it going. Blessed are these who grease the wheel of the old world.

किन्तु उनका काव्य परिपूर्ण क्षणोंकी वाणी है, इस सृष्टिसे वे किसी भी भाषाके कविसे टक्कर ले सकते हैं। कन्नडके सुप्रसिद्ध आलोचक श्यामरावजीने ठीक ही कहा है:—

And so far as his point of perfection, 'at his moment of full poetice autonomy' he seems to be one of those gifted to carry the banner of kannda literature to realms beyond those of their own province.

प्रकृतिके विश्व रूपदर्शन करानेमें 'कुवेम्पु' जी जैसे रससिद्ध कवि भारत-भरमें बहुत कम हैं। श्यामरावजीने ठीक ही कहा है:—

He has tried to interpret Nature in all her aspects, the tender as well as the terrible, as actually seen and felt by him amidst the hills and forests of his homeland."

कन्नड साहित्यमें उनके स्थानके बारेमें श्यामरावजीका कथन द्रष्टव्य है:—

Exploiting the new resources and 'throwing art poetry in splendid, reckless flood and counteract' he has almost become the centre of his literary age.

यह १९२६ में बताई गई बात है। आज तो वे हमारे युगकवि बन गए हैं कुवेम्पुजीकी शैलीकी तुलना प्रतीच्य पवनसे करते हुए आलोचक श्री श्यामरावने कहा है—

Mr Puttappa's poetry has the abundance and swing of the Wafting breeze of the western ghats. It is as profuse as it is unequal and is prudent and polished as it is impetuous and reactionary.

'कुवेम्पु' जी मूलतः प्रकृतिके कवि है; उनकी काव्य चेतनाके निर्माणमें प्रकृतिका विशेष प्रभाव है। किन्तु प्रकृतिने उन्हें पलायनवादी नहीं बनाया, उसकी विकास-परम्पराने कविको गम्भीर चिन्तक बनाया है। उनके चिन्तनको जीवशास्त्र, मनोविज्ञान एवं पदार्थ विज्ञानके तथ्योंने सम्बल दिया है। अतः 'कुवेम्पु' जी समन्वयके विराट् गायक है। उनके काव्यमें परा एवं अपरा विद्याका ज्ञान एवं विज्ञानका श्रेय एवं प्रेयका आदर्श एवं यथार्थका मधुर समन्वय है। बुद्धि एवं हृदयके समन्वयके बारेमें तो उनका स्पष्ट कथन है—“बुद्धि-भावोंका विद्युदालिगन ही प्रतिभा है।” कुवेम्पुजी विकासवादी कवि है। जिस प्रकार एकानुजीवी अभीवा विकसित होते-होते मानवके रूपमें परिणत हुआ है, उसी प्रकार मानवको भी विकासपथमें अग्रसर होना है किन्तु यह बहिर्विकास नहीं है, केवल बहिर्विकास ध्वंसात्मक है। सब प्रकारके बहिर्विकासोंको अन्तर्विकासमें परिणत होना है। इस अन्तर्विकासके लिए मानवमें तीव्र अभीप्साका रहना नितान्त वांछनीय है। इसी अभीप्साके कारण भंगकीट न्यायकी भाँति मानव ही देव बन सकता है:—

हारंसु हारंसु हारंसु, जीव

हारंसु नीनागुवभ्रंगं देव !

हारंसि हारंसि हारंसि

अन्न तानादुदं प्राण;

हारंसि हारंसि हारंसि

हारिदुवो नीरधिय मीन !

हारंसि हारंसि हारंसि

प्राणगुदिसिबु मनोज्ञान;

हारंसि हारंसि हारंसि

सिद्धियात्मात्मविज्ञान !

[हे जीव ! तुम अभीप्सा करो, कामना करो जबतक तुम देव न बनो तब तक अभीप्सा करते रहो। अभीप्सा करते-करते अन्न प्राण बना, अभीप्सा करते-करते ही सागरकी मछली उड़ने लगी। तैरनेवाली मछली उड़नेवाला पक्षी बन गयी इसी अभीप्साके कारण। अभीप्सा करते-करते प्राणमें मनोज्ञानका उदय हुआ। इसी प्रकारकी तीव्र अभीप्साके कारण आत्मविज्ञानकी सिद्धि हुई। अतः तुममें उस प्रकारकी उत्कट अभीप्सा रहनी है।]

‘कुवेम्पु’ जी चैतन्यवादी है; वे जड़ एवं चेतनमें किसी प्रकारका भेद नहीं मानते हैं। जड़की निरन्तर अभीप्साके कारण ही वह चेतन बन रहा है:—

हारैसि हारैसि हारैसि  
 हसुरनुमुदुवो कल्लुमण्णु;  
 हारैसि हारैसि हारैसि  
 कुरुडु जडकुदिसित्तय् कण्णु !  
 हारैसि हारैसि हारैसि  
 चित् उरुळुदुदु सुत्ति सुरळि;  
 हारैसि हारैसि हारैसि  
 मत् अरळुवुदो अत्ते मरळि !

[अभीप्सा करते-करते प्रस्तर लुण्ठोंमें मृत्पिण्डोंमें शस्योंका उदय हुआ। इसी सतत अभीप्साके कारण ही अन्ध जड़में चैतन्यका नेत्र फूट पड़ा। इसी अभीप्सामें रत रहनेके कारण जड़ जगत्में चैतन्यका उदय हुआ। इसी निरन्तर अभीप्साके कारण ही हमारी यह मृण्मयी वसुन्धरा देवभूमि बनगी।]

इसी विकास परम्पराके कारण कुवेम्पुजीका विचार है कि इस जगत्में एक प्रकारकी पूर्ण दृष्टि स्थापित होगी। उन्होंने एक जगह बताया है—“जागतिक जीवन अनेकतासे एकताकी ओर चल रहा है, अनेकताका नाश करनेवाली एकताकी ओर नहीं समन्वयात्मक एकताकी ओर। तत्परिणाम अथवा तत्कारण एक पूर्ण दृष्टि सिद्ध हो रही है। इस पूर्ण दृष्टि एवं समन्वय बुद्धिके परिणामस्वरूप एक प्रकारकी सर्व समानताका समता भाव उदित हो रहा है। राजकीय एवं आर्थिक रंगोंमें वह वर्णपूर्ण बने कलह एवं सन्धियोंसे रञ्जित हो प्रकट हो रहा है। किन्तु सामाजिक एवं धार्मिक तथा साहित्यिक कलारंगोंमें वह अपने निगूढ़ कार्यमें रत है।

मत, धर्म, एवं देवता आदिके बारेमें भी संकीर्ण भावनाएँ विशाल भावनाओंमें परिणत हो रही हैं। उग्र राष्ट्रीयताकी स्वायत्तता एवं स्वप्रतिष्ठा अन्तरराष्ट्रीय आदान-प्रदानकी मैत्रीकी शरणमें गए बिना शान्ति एवं क्षेम किसी भी देशको चाहे वह कितना भी बड़ा हो, बलिष्ठ हो, श्रीमान् हो—प्राप्त नहीं हो सकते। इस प्रकारकी मनोवृत्ति राजकार्योंमें और समयसे अधिक आज उदित हो रही है। सम्पत्तिके विनियोगमें सबका समभाग, सबके समजीवनवाले मूलतत्त्वका अनुष्ठान दिन दूनी रात चौगुनी गतिसे बढ़ रहा है। सर्वोदय सिद्धान्त संस्थापित हो रहा है।

इन सबकी ओर लक्ष्यकर हम यह निस्सन्देह बता सकते हैं कि समन्वय, सर्वोदय एवं पूर्ण दृष्टि—ये तीन महान् तत्त्व संसारके भविष्य जीवनके मूल मन्त्र बनेंगे। ये मूलमन्त्र ही भावी साहित्यके भागदंशक बनेंगे।”

‘कुवेम्पु’ जीकी सूक्ष्म चेतना मार्क्सवादी आदर्शों और सर्वथा निरपेक्ष भौतिक यथार्थोंमें ही लिप्त रहकर परितोष नहीं पा सकता। यहाँ तक कि उनको उससे

विरक्ति हो गई। उसी तत्वको भारतीय भावभूमिमें प्रतिष्ठापित करनेवाला तत्व है सर्वोदय। अतः सर्वोदय, जिसमें हिसाके लिए स्थान नहीं है, जिसमें मानवीय उच्च मूल्योंके प्रति आस्था है, 'कुवेम्पु' जीका प्रिय विषय बना है, सर्वोदयरवि सन्त विनोबाके सत्संगोंको प्राप्त कर 'कुवेम्पु' जी पुनीत हुए है।

इसका यह अर्थ कदापि नहीं कि 'कुवेम्पु' जीको भौतिक वस्तुओंसे तिरस्कार है, चिढ़ है। उनकी आध्यात्मिकता साम्प्रदायिक नहीं है, मनोवैज्ञानिक है। उसमें आध्यात्मिक मानववाद, जिसे हम आध्यात्मिक विकासवाद भी कह सकते हैं, मानव हृदय विभूतियोंका परम विकास है। उनकी रामायणकी भी इसी विकासवादकी व्याख्या मात्र है। पन्तजीकी भाँति 'कुवेम्पु' जीने भी राम कथाको युग विकासकी चेतनाके विकासकी व्याख्याके रूपमें जीवकी अन्नमय भूमिकासे आनन्दमय भूमिकाकी ओरकी यात्राका इतिहास कहा है। किन्तु इस विकास-परम्परामें भौतिकताका परिष्कार है, तिरस्कार नहीं है, उन्नयन है (Sublimation)। आजके कलह, कोलाहल आदिसे ताड़ित एवं व्यथित होता हुए भी कवि आशावादी रहा है। उसकी यह ध्रुव धारणा है कि मानवताका विकास दैवत्वमें अवश्य होगा, किन्तु उसके लिए मानवमें अभीप्सा, निरन्तर साधनाकी, कामनाकी आवश्यकता है।

जिसको पन्तजी नवचेतनवाद अथवा नवमानववाद कहते हैं, वही भाव 'कुवेम्पु' जीके काव्यमें भी दर्शात होता है। 'कुवेम्पु' जीके चिन्तनके लिए योगिराज अरविन्दके जीवनकी भूमानुभूतिकी पुष्टि मिली। विश्वकल्याणके लिए 'कुवेम्पु' जी अरविन्दको इतिहासकी सबसे बड़ी देन मानते हैं। उनका यहाँ तक विचार है कि एक ऐसा दिन आएगा जब कि विश्वके सब प्रधान विश्व विद्यालयोंमें 'अरविन्द दर्शन' के लिए ही एक स्वतन्त्रपीठकी स्थापना होगी।

जड़ और चेतन सान्त एवं अनन्त, क्षर एवं अक्षर सबमें उन्होंने सत्यकी प्रतिष्ठा की है:—

**चेतन मूर्तियु आ कल्लु**

**तेगे जडवेंबुदु सुळ्ळु !**

[ चैतन्य मूर्ति है वह प्रस्तरखण्ड, छोड़ी, जड़ नामकी वस्तु ही मिथ्या है। ]

**चैतन्यके जडवेंबुदु**

**कविभावके भाषे**

[ जड़ चैतन्यके लिए, कवि भावके लिए भाषाका जो सम्बन्ध है, वही सम्बन्ध जड़ एवं चेतनमें है। ]

**स्थूल जड जगवेल्ल**

**ध्यान वृष्टिगे भावविन्यासद्वंद्वि**

**वेधवागृतिदे । कविदर्शनके जडविल्ल;**

**जडवेंबुदेल्ल चेतनेय नरने यलीले ।**

[सभी स्थूल एवं जड़ जगत् ध्यान दृष्टिको भावविन्यासकी भाँति दृष्टिगत हो रही है। कविके दर्शनमें जड़ वस्तु है ही नहीं, जड़ चैतन्यकी नाट्य लीला है।]

शिव तत्त्वकी खोज तो कविने सर्वत्रकी है। यहाँ तक कि 'कुवेम्पु' जीका विचार है कि शिव ही काव्यका नेत्र है :—

**शिव काणदे कवि कुरुडनो**

**शिव काव्यय कण्णो ।**

[ शिवको देखे बिना कवि अन्धा है, शिव ही काव्यका नेत्र है । ]

'कुवेम्पु' जीकी यह ध्रुव धारणा है कि दर्शनके बिना काव्य बन सकता है, किन्तु महाकाव्य नहीं, चिरन्तन काव्य नहीं। अतः क्रान्तदर्शी कविको अिस दर्शनके द्वारा मानवताके विकास-पथका आलोकित करना है।

'कुवेम्पु' जी युगचेतनाकी ओर सतर्क हैं। वे निरे आशावादी नहीं हैं, वर्तमान परिस्थितियोंके प्रति गाढ़ विपाद भी उनके मनमें हैं; किन्तु सुदूर भविष्यके ज्योतिर्मय दिनोंकी आशा उन्हें धीरज बंधाती है।

'कुवेम्पु' जीने मानवताको नाशके स्थानपर निर्माणका, जड़के स्थानपर, चैतन्यका, वैषम्यके स्थानपर सभन्वयका, घृणाके स्थानपर प्रेमका सन्देश दिया है।

'कानूर हेग्गडिति' 'कुवेम्पु' जीका बृहत् उपन्यास है, जिसे हम मलेनाडु (पर्वत प्रदेश) का महाभारत कह सकते हैं। मानव एवं प्रकृतिके संघर्ष एवं प्रेमकी व्यञ्जना करनेवाली मार्मिक कृति है। इसमें सैकड़ों चित्र, सैकड़ों पात्र हैं। यह वहाँके कृषक एवं श्रमजीवियोंके जीवनकी आशा-आकांक्षा, राग विरागका रत्न दर्पण है। उनकी कहानियाँ 'मेरे देवता तथा अन्य कहानियाँ' आदि स्वामी विवेकानन्द, रामकृष्ण आदि जीवनियाँ 'मले नट्टि चित्र' आदि गद्य चित्र कन्नड़की श्रीवृद्धि करनेमें महत्वपूर्ण योग देते हैं। जीवनका ऐसा कोई भी क्षेत्र नहीं है, जिसका स्पर्श 'कुवेम्पु' जीने नहीं किया हो। इनकी इस अगस्त्य शक्तिको देखकर जी. पी. राजरत्नजीने उनको 'टिटान' (Titan) कहा है। 'तपोनन्दन', विभूति पूजे', 'द्रौपदिय श्रीमुडि', 'काव्यविहार' आदिमें उनके उत्कृष्ट आलोचनात्मक लेख संग्रहित हैं जिनमें उन्होंने आलोचनाका नया मान ही उपस्थित किया है। गीतकारके रूपमें 'कुवेम्पु' जीने जो काव्य-साधनाकी है, वह हमारे लिए गौरवकी बात है।

कुवेम्पु संघर्षजीवी नहीं हैं, व्यक्तिजीवी हैं। आज भी वे भीड़-भाड़से भागते हैं। सभा, समारम्भ, शोरगुलसे वे सदा दूर रहते हैं। उनका अध्ययन-कक्ष ही उनका विश्व है, संसारके महान् कवि एव चिन्तक ही उनके मित्र हैं। उनका जीवन काव्यकी छलछलाती धारासे ओतप्रोत है। एक प्रसिद्ध आलोचकने ठीक ही कहा है :—

“The poet and the man are not different in him”.

‘कुवेम्पु’

[ काव्य-सञ्चय ]

## १. इन्तह सुन्दर प्रातः कालदि

---

● ● ● ●

इन्तह सुन्दर प्रातःकालदि  
जीविसुबुर्दकितलु बरेय गुरि  
जीवके बेकिल्लः  
चिरसौंदर्यद संपदविद्दरे  
धर्मके च्युतियिल्ल ।  
मतियल्ल ; —  
रसानुभूतिय रसपथवल्लदे  
सत्यके गतियिल्ल ! ॥१॥

निन्नय संजेय मळ्ळेयलि मिंदु  
कळकळिसुव हसुर्बयललि इंदु  
होंबिसिललि उरिदिरे जलर्बिंदु  
सत्तळो उर्वशि स्वर्गदलि !  
गाळिय मंडल स्फटिकदबोलिदे ;  
नभवो नील वितानव होलिदे ;  
अल्लल्लिये मुगिलिन पट तेलिदे :  
वैकुण्ठविदे निसर्गदलि ! ॥२॥

## १. ऐसे सुन्दर प्रातः कालमें

[सौन्दर्यानुभूति केवल शब्दों द्वारा वर्णित नहीं वरन् हृदय द्वारा अनुभव की जानी चाहिए। वस्तुतः सौन्दर्य हृदयकी वस्तु है, बुद्धि और तर्ककी नहीं। रस प्राण कवि इसी विराट् सौन्दर्यकी जो आराधना करता है, उससे मानव आत्माके युग-युगोंकी सौन्दर्य पिपासा शान्त हो जाती है। अतीन्द्रिय आनन्दकी अनुभूति, अतीन्द्रिय वस्तु-जगतका विहार महाकवि 'कुवेम्पु' जीके काव्यकी विशेषता है। वस्तुतः 'कुवेम्पु' जीने सूक्ष्म भाव भूमिपर आरोहण किया है। आरोहण करते समय कविकी शुद्ध चेतना 'रसो वै सः' कहती है तो अवरोहण करते समय उनकी प्रबुद्ध चेतना 'रसोऽहं' का उद्घोष कर रही है।]

ऐसे सुन्दर प्रातः कालमें जीवित रहनेसे अधिक जीवनका दूसरा लक्ष्य कुछ भी नहीं है ; कुछ भी नहीं होना चाहिए। जब तक चिर एवं अविनाशी सौन्दर्यकी सम्पदा हमारे पास रहती है, तब तक धर्मकी च्युति नहीं होती। आनन्दका कारण मति नहीं है। रसानु-भूतिके रस पथको छोड़कर सत्यके समक्ष और कोई मार्ग ही नहीं है ॥१॥

कलकी सन्ध्या, वर्षामें निमज्जित होकर लहलहानेवाली हरित भूमिपर आज सूर्यकी रश्मिमें तुहिन कण जगमगा रहे हैं। उसके अलौकिक सौन्दर्यको देख स्वर्गकी उर्वशी भी मर जाती है। सारा वायु-मण्डल स्फटिककी भाँति आलोकमय है। नील नभ वितान-सा है। अत्र-तत्र मेघोंका वस्त्र उसपर आच्छादित हो लहरा रहा है। सचमुच वैकुण्ठ निसर्गमें ही है ॥२॥

दनकरुगळु बयललि मेयुत 'इवे';  
 गिरि तरुगळु बदुकनु सवियुत 'इवे';  
 अरिवासेय मायेगे बीळदे 'इवे';  
 इरुविकेयानंददि नलियुत 'इवे';  
 'इवे'; --

इरुविकेगितलु हेच्चिन गोजिगे  
 होगदिवे !  
 'अरिवा'सेये मायाबंध;  
 'इरु' वुदे मुक्तिय आनंद !  
 'अरिवा'सेय बिडु; 'इरु' वासेय तोडु!  
 इंतह समयदि 'इरु'विकेगितलु  
 हेच्चिन 'अरिवि' लल !  
 इंतह दिव्यप्रभातकालदि  
 जीविसुवुर्दकितलु रसजीविगे  
 बरेय गुरियिल्ल ! ॥३॥

पशु संकुल मैदानमें घास चर रहे हैं। गिरि तरु जीवनका स्वाद ले रहे हैं। वे सब जिज्ञासाकी मायाके चंगुलमें नहीं फँसे हैं। केवल अस्तित्वके आनन्दमें रम रहे हैं। जीनेसे अधिककी चिन्तामें वे नहीं पड़े हैं। जाननेकी आशा, जिज्ञासा ही मायाका बन्धन है। केवल रहना ही, अस्तित्वही मुक्तिका अखण्ड आनन्द है। अतः जाननेकी आशा, जिज्ञासाको छोड़ दो। रहनेकी आशा बाँधे रहो। ऐसे सुन्दर समयमें, मधुमय वातावरणमें रहनेसे, अस्तित्वसे बढ़कर कोई ज्ञान नहीं है। ऐसी दिव्य प्रभात बेलामें जीवित रहनेसे अधिक और कोई लक्ष्य नहीं है, गन्तव्य नहीं है ॥३॥

---

## २. मोहिसुव संजे

---

• • •

मळयिळिदु नितिहुदु !  
होस कंपु, होस तंपु,  
होस सोंपु, होस पेंप  
तोरुतिहवु !  
बयलिगाशिसि एदेयु  
हारुतिहुदु ! ॥१॥

तंगाळि बीसुतिदे;  
कोगिलेयु कूगुतिदे  
बैगुगोंपबरदि रंजिसिहुदु !  
तिरेयेल्लवं संजे  
मोहिसिहुदु ! ॥२॥

बैगुगोंपोकुळिय  
तेरे तेरेगे हरडिहुदु;  
पसुरु तलेदूगुवुदु  
केरेयंचोळु !  
गूड बिडु, बा होरगे;  
'गीते' यिरली ! ॥३॥

## २. मोहमयी सन्ध्या

[अज्ञात एव अप्राप्यको प्राप्त करनेकी शाश्वत मानव चेष्टा वस्तु-जगत्से मनुष्यके चिरन्तन अन्तर्विरोधका प्रतीक बन जाती है। किन्तु महाकवि 'कुवेम्पु' बुद्धि पक्षकी अपेक्षा हृदय-पक्षको, चेतनाकी अपेक्षा अवचेतना या अन्तश्चेतनाको, तर्क-ज्ञानकी अपेक्षा दिव्य ज्ञानको, दिवस और धूपकी अपेक्षा रात्रि और ज्योत्स्नाको महत्व देते हैं। इस कवितामें कवि बुद्धि पक्षका निराकरण करते हुए अपने हृदयको उन्मुक्त कर 'सुन्दर' में ही 'शिव' को देवनेका सन्देश देता है। शास्त्र ज्ञान, तात्त्विक ज्ञान आदिसे जो वस्तु 'नेति नेति' बन जाती है, वही प्रकृति परीक्षणके द्वारा भावगम्य होती है। उसके लिए केवल हृदयकी मुक्तावस्थाकी आवश्यकता है। यही तो सौन्दर्ययोग है! ]

वर्षा अभी-अभी रुकी है। सर्वत्र नवीन सुगन्ध, नवीन सुपमा, नवीन शीतलता एक नवीन गरिमासे मण्डित है। इस प्रकार नवीन सुषमासे मण्डित मैदानके दर्शनके लिए मेरा हृदय लालायित हो रहा है, स्पन्दित हो रहा है ॥१॥

सुगन्ध फैल रही है। कोकिलने अपनी पञ्चम तान छोड़ दी है। सन्ध्याकी लालिमा अम्बरमें शोभायमान है। सकल धरित्रीको सन्ध्याने मोहित कर दिया है। ऐसा मालूम पड़ता है मानो सारी धरित्री मोह-मुग्ध हो गई है ॥२॥

सन्ध्याकी अरुणिमा सर्वत्र फाग खेल रही है। वसन्तराग हर जगह छिड़क दिया गया है। पुष्करिणियोंके किनारे, तड़ाग-तीरोंपर हरियाली छा गई है, अपने आप सौन्दर्यपर ही मुग्ध हो रही है। हे बन्धु, तुम अपने नीड़ोंको छोड़कर आओ, बाहर आओ, भगवद्गीताको उधर रखकर आओ ॥३॥

बिदिर मेळयलि गाळि  
 तवरूर कतेगळनु  
 मोरेद्युत्तल लेयुत्त  
 सुळि सुळिवुदु !  
 सोबगिनलि "गीते" यनु  
 मति तिळिवुदु ! ॥४॥

मोडगळ सिरिगेंपु  
 पंडितर पांडित्य  
 मेत्तलमं बोधिपुदु;  
 मीरिरुवुदु !  
 सोबगिनलि शिवनेंदु  
 सारुतिहुदु ! ॥५॥

निरतेयंबुधियल्लि  
 मुळुगु वा तेलु वा !  
 करगु वा; वा नोडु  
 परमात्मनं !  
 वा, होरगे, गूड बिडु  
 वा, बेग, वा ॥६॥

---

वाँसोंके झुरमुटमें समीर अपनी मातृभूमिकी मनोरम कहानियोंको सुना-सुनाकर भटक रहा है। हमारी बुद्धिको सौन्दर्यमें ही गीताका मर्म बोध हो जाता है। अतः उसे पढ़ते रहनेकी अपेक्षा सौन्दर्य-दर्शनमें तल्लीन हो जाओ ॥४॥

मेघ-मण्डलपर आच्छादित यह मोहक सन्ध्याराग पण्डितोंके समग्र पाण्डित्यका बोध कराता है, उन सबके ज्ञानको मात करता है। वह सन्ध्याराग यह घोषणा कर रहा है कि 'सुन्दर' में ही 'शिव' है, ईश्वर है ॥५॥

निश्चिन्तताके सागरमें डूबने आ, अवगाहन करने आ, आप्लावित होने आ, द्रवित होने आ, आ इधर देख प्रभु आँखोंके सामने विराजमान हैं। आ, बाहर आ न, अपने नीड़ोंको तजकर आओ न बन्धु ! ॥६॥

---

### ३. बा फालगुण रवि दर्शनके

शिव मंदिर सम वन सुंदर सुम शृंगारद गिरि शृंगके बा;  
बा फालगुण रविदर्शनके !

कुंकुम धूळिय दिक्कटवेदियोळोकुळियलि सिंदेळुवनु;  
कोटि विहंगम मंगलरवरस नैवेद्यके मुद ताळुवनु;  
चित्रद चेंडेने मूडुवनु; होन्नने होय् नीर् नीडुवनु ।  
सृष्टिय हृदयके प्राणाग्निय होळे हरियिसि रवि दयमाडुवनु ! ॥१॥

तेरे तेरेयागिह नोरे नोरे कडलेने नोडुवकण्णोडुववरेगे  
बनसिरि तुंबिइ कणिवेय हंबिरे धूळीसम हिम बान् करेगे  
प्रतिभेय होमाग्निय मेले कविमन तानुरिदुरिदेळे  
मरगिडदलि जडदोडललि इदेको स्पंदिमुतिदे भावज्वाले ! ॥२॥

वर्णनदिद्विय नंदनवनु दांटुते दर्शन मुक्तिय सेरि  
व्यक्तते मै मरेवुडु सौंदर्य समाधियोळानंदव हीरिः  
सर्वेन्द्रिय सुख निधि अल्लि; सर्वात्मन सन्निधि अल्लि;  
सकलाराधन साधन बोधनदनुभवरस तानहुदल्लि ! ॥३॥

### ३. फागुन मासके रवि-दर्शनके लिये आ

[प्रकृतिके अनन्य आराधक कवि 'कुवेम्पु' जीकी कवितामे सौन्दर्योल्लास नहीं विराट् सौन्दर्यकी अखण्ड पूजा दर्शित होती है। सौन्दर्यको ही ईश्वर माननेवाला कवि प्रकृतिके अणु-अणुमें उसी अज्ञात सत्ताकी मधुमय झाँकी पाता है। उसकी मधुर झाँकीसे कवि समाधिस्थ हो जाता है। सत्य और सौन्दर्यकी अखण्डानुभूतिमें मग्न होता है, प्रकृति एवं मानवी आत्मामे तादात्म्य स्थापित करता है। सर्वत्र एक व्यापक दिव्यताका अनुभव करता है। मूर्योदयका वर्णन बहुत ही प्राचीन एवं परम्परागत है। किन्तु कुवेम्पु जीने उसमें नवजीवन फूँका है। कन्नड़की प्रकृति सम्बन्धी कविताको 'कुवेम्पु' जीने अपने गम्भीर दर्शनके द्वारा जो आत्मदान दिया है, वह सचमुच हमारे लिए गौरवकी बात है।]

शिव-मन्दिर सम सुन्दर बन तथा कुसुमोंके शृंगारसे मण्डित गिरि शृंगपर जाएँ, आ हम फागुन मासके रविके दर्शन करें ॥१॥

वह फागुन महीनेका रवि कुंकुम-धूलिकी दिगन्त-वेदिकापर लालिमामें डूबकर उठेगा। उसके समक्ष कोटि-कोटि विहंग मंगल रवका रस नैवेद्य चढ़ा रहे हैं। उससे रवि मुदित हो रहा है। स्वर्ण कन्दुककी भाँति रवि उदित हो रहा है। सर्वत्र सुवर्णका जल छिड़का जा रहा है। अखिल सृष्टिके हृदयमें रवि प्राणाग्निका संचार करता आ रहा है ॥२॥

धूलि रूपी हिम कल्लोल मालाकी भाँति, फेनिल सागरकी तरह देखनेवालोंकी आँखोंके समक्ष वन-श्रीसे मण्डित घाटियोंमे आकाशके तटपर व्याप्त हो रहा है। प्रतिभाकी होमाग्निकपर कविका मन प्रज्वलित हो रहा है। तरु-लताओंमें तथा जड़ वस्तुओंमे भी इधर देखो भाव ज्वाला स्पन्दित हो रही है ॥३॥

वर्णनसे इन्द्रियके नन्दन काननको पारकर दर्शनकी मुक्तिपर पहुँचकर हमारा व्यक्तित्व उस सौन्दर्य-समाधिके आनन्दका पानकर विलीन हो जाता है। वह प्रकृति सकल इन्द्रियोंके लिए सुख-निधि है सर्वात्माकी सन्निधि है। उस विराट् प्रकृतिके सान्निध्यमें सकल साधना, आराधना एवं बोधकी अनुभूति अपने आप हो जाती है ॥२॥

## ४. हसुरु



नवरात्रिय नवधात्रिय  
 ई श्यामल वनधियलि  
 हसुरादुदो कवियात्मं  
 रसपान स्नानदलि ! ॥१॥

हसुरागस; हसुरु मुगिलु;  
 हसुरु गद्देया बयलु;  
 हसुरिन मले; हसुरु कणिवे;  
 हसुरु संजेयी बिसिलू ! ॥२॥

आश्वीजद शालिवनद  
 गिलियेदे बण्णद नोट;  
 अदरेडेयलि बनदंचलि  
 कोनेवेत्तडिकेय तोट ! ॥३॥

अदो हुल्लिन मकमल्लिन  
 होसपच्चेय जमखाने  
 पसरिसि तिरि मैमुच्चिरे  
 बेरे बण्णवने काणे ! ॥४॥

## ४. हरीतिमा

[ 'कुवेम्पु' जीने प्रकृतिके प्रांगणमें खुलकर भोली आँखोंसे उसकी सुषमाका रसपान किया है। प्रकृति एवं मानवकी अद्वैत साधना उनमें दर्शित है। प्रकृतिके प्रत्येक स्पन्दनको, धड़कनको सुननेवाला कवि भृंगकीट-न्यायकी भाँति प्रकृतिमें एकरस एकतान हो प्रकृतिमय बन बैठा है; उसके सब नाम, रूप आदि उपाधियाँ उसमें लय हो जाती हैं। इससे बढ़कर साधना और क्या हो सकती है? इससे बढ़कर प्रकृति पूजा अन्यत्र कहाँ दर्शित होती है! ]

नवरात्रिके, नवधात्रीकी इस श्यामल वन-श्रीमें, उसकी अलौकिक रस माधुरीमें स्नानकर, उस माधुरीका पानकर कविकी आत्मा भी हरी बन गई है, हरित रंगकी हो गई है। १॥

अनन्त आकाश भी मनमें आनन्दकी हिलोर उठाता है। मेघ-मालाएँ भी हरीतिमामय ( मनको आनन्दित करती हैं ) हैं। शालि-वन भी हरीतिमामय है। शैलमालाएँ हरीतिमामयी हैं। घाटियाँ भी हरी-हरी हैं। सन्ध्याकी रश्मि भी, सूर्य-प्रकाश भी हरी-तिमामय है ॥२॥

आश्विन मासके शालिवनके शुकोंके वक्षका दृश्य, उसीके समीप स्थित सुपारियोंकी वाटिका, सभी हरियालीमें डूबी हैं ॥३॥

उधर हरी-हरी घासका मखमली कालीन बिछा है। वसुन्धरा हरिदम्बर धारिणी बन अपनी देहको आच्छन्न किए हैं। दूसरा कोई रंग ही नहीं दिखाई दे रहा है ॥४॥

होसह्विन कंषु हसुरु;  
एलरिन तंपू हसुरु!  
हक्किय कोरलिपु हसुरु;  
हसुरु हसुरिळ्ळेयसिरु ! ॥५॥

हपुरत्तल् ! हसुरित्तल्  
हसुरेत्तल् कडलिनलि  
हसुर्गट्टिटो कवियात्तमं  
हसुर् नेत्तर् ओडलिनलि ! ॥६॥

---

नव सुमनोंकी सुगन्धि भी हरी हरी है; मन्द मन्द गन्धवाही मरुतकी शीतलता भी हरी-हरी है। पक्षियोंका कल-कण्ठ भी हरीतिमा-मय है। हरीतिमा, हरीतिमा, सर्वत्र हरीतिमा है, अखिल-धरित्री ही हरीतिमामय है! ॥५॥

उधर हरीतिमा, इधर हरीतिमा, अत्र-तत्र—सर्वत्र हरीतिमा ही हरीतिमा है। इस हरीतिमाके अपार पारावारमें कविकी आत्मा भी डूबकर हरी बन गई है। कविकी देहका रक्त भी हरा बन गया है। कविकी नाड़ी-नाड़ीमें हरीतिमा ही सञ्चरित हो रही है ॥६॥

---

## ५. नविल



जीवन वनदलि कवन मयूरं,  
 निखिल भुवन मन नयन विहारं,  
 कल्पने-कण्णळ सासिर नूरं  
 तेरेदु कुणिवुदावेशदलि,  
 दिन दिन निशि निशि माया रूपसि  
 मेरेयलु नव नव वेषदलि ॥१॥

तिमिरद तीरदि प्रत्यूषे-मूरुति  
 बेळगे दिनेशगे मंगळदारति,  
 स्वर्णसलिलसम शीतल दीधिति  
 शोभिसे प्राच्य दिगंगदलि,  
 कुणि ओ मोहिनि, कवन कलापिनि,  
 मानस माया रंगदलि ॥२॥

खगशत कूजन मुखरित वनदलि  
 पल्लव मुद्रित विजनविपिनदलि,  
 शामल शाड्वल भुवनशयनदलि  
 मीत अरुण तपनातपदि,  
 अर्धनिमीलित अर्धोन्मीलित  
 संध्यातापसियिरे तपदि; ॥३॥

## ५. मयूर

[सौन्दर्यके पुजारी कविका मन-मयूर प्रकृतिके प्रांगणमें प्रकृतिकी आनन्द मुषमाके बीच मेघ-मोहनको देख नाच उठता है। जीवनके वनमे वही कविता बनकर अपने सहस्र-सहस्र पंखोंको खोलकर नाचने लगता है। वस्तु-जगत्से उठकर भाव-जगत्में जाकर कवि आत्माराम वन सौन्दर्य-साधनामे तन्लीन हो जाता है। कविकी नवनवोन्मेपशालिनी प्रतिभा इस कवितामे सौन्दर्योन्मादसे मिश्रित होकर फूट पड़ी है। कविकी सौन्दर्योल्लास ही इस प्रारम्भिक कविताकी विशेषता है।]

जीवन-वनमें कवितारूपी मयूर, निखिल भुवनके मानस नयनमें विहार करते अपने कल्पनाके सैकड़ों-हजारो नेत्रोंको खोलकर नर्तन कर रहा है। दिन-दिन, निशि-निशिमें रूप बदलनेवाली माया रूपसी प्रकृतिकी रम्य गोदीमें कविका काव्य-मयूर पुलकित होकर नाच उठता है ॥१॥

तिमिरके तीरपर प्रत्यूषाकी मूर्ति दिनेशकी मंगल आरती उतार रही है। प्राचीके दिगन्तमें स्वर्ण सलिल सम शीतल दीधिति शोभित हो रहा है। ऐसी मनोरम परिस्थितिमें हे काव्य कलापिनी, मोहिनी मन मानस मायारंगमें नाचो न ॥२॥

खगशतकूजन-मुखरित वनमें, पल्लव मुद्रित विजन विपिनमें, श्यामल शाद्वल भुवन शयनमें, पीत अरुण नयनके आतपमें जब अर्द्ध-निमीलित एवं अर्धोन्मीलित सन्ध्या तापसी विराजमान रहती है, तब नाचो न हे मेरे मन-मयूर ! ॥३॥

दीर्घ दिगंतद रेखा तोरण,  
नीलाकाशद स्वर्गारोहण,  
मृण्मयशैलद चिन्मय धारण  
विरचित रसलिपि भित्तियलि,  
निर्जर संगिनि, भाव तरंगिनि  
प्रवहिसिंहे रसऋषि चित्तदलि, ॥४॥

रिक्त गगनदलि पडुवण गाळि  
बीसुत बरे कार्मुगिलनु तेलि,  
करिगळनटटुव हरियनु होलि  
विद्युत्-वज्राघातदलि,  
हर्षोत्कर्ष प्रथम सुवर्ष  
सुरिये अजस्र-स्रोतदलि; ॥५॥

इति जीवन शत हास विलासदि,  
मुक्तिय बंधुर मायापाशदि  
रचितकलामय रास निवासदि,  
विकसित अक्षि सहस्रदलि  
कुणि ओ मोहिनि, कवन कलापिनि,  
सुन्दर लास्य-अजस्रदलि ॥६॥

---

दीर्घ दिगन्तकी रेखाओंका बन्दनवार बँधा है। नील आकाशका स्वर्गारोहण हो रहा है। मृण्मयशैल चिन्मय बाना धारण कर अपनी भित्तिपर रस लिपि लिख रहा है। हे निर्झर संगिनी कविते, रस ऋषि कविके चित्तमें भावतरंगें प्रवाहित करते नाचो न ! ॥४॥

मुक्त गगनमें प्रतीच्यपवन वर्षाकालीन मेघोंको भगा आता है, हाथियोंको भगानेवाले सिंहकी भाँति गर्जन-तर्जन करता आ रहा है, विद्युत् वज्राघातोंके साथ आ रहा है। इस प्रकार जब हर्षका उत्कर्ष हो जाता है, प्रथम वर्षा हो जाती है तब कवितारूपी मयूर, तुम अजस्र रूपमें नाचो न ! ॥५॥

इति जीवनके शत हास विलासोंमें, मुक्तिके बन्धुर मायापाशके द्वारा रचित कलामय रास निवासमें जब तुम्हारे सहस्त्रों अक्षि विकसित होते हैं, तब हे मोहिनी, हे काव्य कलापिनी मोरनी सुन्दर लास्य करो, अजस्र रूपमें लास्य करो न ! ॥६॥

---

**६. देवरु रुजु माडिदनु !**

---

● ● ● ●

देवरु रुजु माडिदनु;  
रसवशनागुत कवि अद नोडिदन ! ॥१॥

बित्तरदागस हिनैलेयागिरे  
पर्वतदेत्तर सालागेसेदिरे  
किक्किरिदडविगळंचिन नडुवे  
मेरेदिरे जलसुंदरि तुंगे  
देवरु रुजु माडिदनु  
रसवशनागुत कवि अद नोडिदनु ! ॥२॥

## ६. ईश्वरने हस्ताक्षर किये

[ 'कुवेम्पु'जीकी विराट् चेतना प्रकृतिके रमणीय दृश्योंको देखकर विस्मित और मुग्ध हो उठती थी। उनकी चेतना अपने अन्तरंगमे तरंगित सौन्दर्यको बाह्य प्रकृतिमें आरोपित कर किसी अज्ञात छविको अंकित करनेमें लीन रही। किन्तु जैसे-जैसे उनकी सौन्दर्य-पूजा बढ़ती गई वैसे-वैसे कवि प्रकृतिको ही परमात्माके रूपमे देखने लगता है। प्रकृति वं परमात्माकी इस अद्वैतानुभूतिमे कवि भी एकात्म हो उठता है। 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म' के इस सत्यकी अनुभूति करने लगता है। 'इस अवण्ड सौन्दर्यका चारु चित्रकार मैं ही हूँ, इस प्रकार मानो विभिन्न रहस्यमय सकेतोंसे वह छवि उसे व्यक्त कर रही है। बलाक पक्षियोंकी पक्ति जब जाती रहती है, तो कवि यह अनुभव करता है कि सौन्दर्यके रूपमें मैं ही प्रकट हो रहा हूँ, इस वक्तव्यकी अनुभूतिके लिए मानो ईश्वरने बलाक पक्षियोंकी पक्तियोंके रूपमें हस्ताक्षर किये हों। ]

ईश्वरने हस्ताक्षर किये ! रस परवश होते कविने उसे देखा ॥१॥

विस्तृत आकाशकी पृष्ठभूमि, पर्वतोंकी ऊँचाई पंक्ति-पंक्तिमें विराज रही है। जटिल-कुटिल अटवीके मध्य जल-सुन्दरी तुङ्गा विराज रही है। इस प्राकृतिक पटभूमिमें ईश्वरने हस्ताक्षर किये। रस परवश होते कविने उसे देखा ! ॥२॥

नदि हरिदित्तु; बन नितित्तु;  
 बान् नीलिय नगे बीरित्तु ।  
 निर्जन देशद नीरव कालके  
 खगरव पुलकं तोरित्तु ।  
 हू बिसिललि मिरुगिरे निरिवोनलु  
 मोरेदिरे बंडेगळलि नीर्तोदल  
 रंजिसे इक्केलदि होम्मळलु  
 सिब्बलु गड्डेय होळ्ळेलिमीय्त  
 कविमन नाकदि नेलसित्तु;  
 मधु सौंदर्यद मधुर जगत्तु  
 हृदय जिह्वगे जेनागित्तु ! ॥३॥

दृश्य दिगंतदिनोम्मेये होम्मि  
 गिरिवन पटदाकाशदलि  
 तेलुत बरत्के बलाक पंडित  
 लेखन रेखा विन्यासदलि,  
 अवाङ्मय छंदः प्रासदलि,  
 सृष्टिय रचनेय कुशलके चंदके  
 जगदच्चरियंदद ओष्पंदके  
 चिरचेतन तानिहेनेंबंददि  
 बेळ्ळक्किय हंतिय आ नेवदि  
 देवह रुजु माडिदनु  
 रसवशनागुत कवि अद नोडिदनु ॥४॥

नदी अपनी गतिसे बह रही थी, वन खड़ा-खड़ा देख रहा था। आकाश नील हास्यको विकीर्ण कर रहा था। निर्जन एवं नीरव देश कालको देख खगकुल पुलकित हो रहा था। उसके कण्ठसे सुमधुर रागिनी फूट रही थी। सूर्यातिपममें जल धारा जगमगा रही थी। चट्टानोंके बीच जल तुतला रहा था। नदीके दोनों पार्श्वोंमें स्वर्ण-सैकत-शैय्या विराज रही थी। सिब्वलुगड्डे नामक एक स्थानपर नदीमें स्नान करते हुए कविका मन स्वर्गीय आनन्दको लूट रहा था। मधु-सौन्दर्यका मधुर जगत् हृदय जिन्हापर मधु बना था ॥३॥

दृश्यमान दिगन्तमें हठात् गिरि, वन एवं आकाशकी पट भूमिपर बलाक पक्षियोंकी पंक्ति उड़ती आ रही थी। उसका उठना लेखन विन्यासमें था, ऐसा लगता था मानो कोई कुछ लिख रहा हो। अवाङ्मय छंदः प्रासमें, सृष्टिके रचना-कौशलपर, सौन्दर्यपर जगके आश्चर्यपर ईश्वर भी मुग्ध हो गया। इन सबके पीछे मैं हूँ, इस प्रकार अपना वक्तव्य देकर उन बलाक पंक्तियोंके व्याजसे ईश्वरने अपने हस्ताक्षर किये। इस परवशीभूत होकर कविने उसे देखा ॥४॥

-----

## ७. केंदलिरु



आः ! नितु नोडिल्लिः  
 स्वर्गवरळुतिदे आ मरद मंसिरियल्लि !  
 उर्वशि तिलोत्तमेयरेल्ल नतिपरल्लि  
 आ मरद केंदळिरिनिद्रनास्थानदलि !  
 नित हज्जेय कीळलारदेये नडेगेट्टु  
 नोडुतिहे नानोंदु मरवागि मरवट्टु !  
 अय्यो बेडुवे नानु ! आः ! नितु नोडिल्लिः  
 चेतनद चिलुमे चिम्मतिदे आ भरदल्लि ! ॥१॥

ना कंड चेलुवेयर चेंदुटिगळेल्ल  
 संगमेलगैदंते तोरुतिहुदिल्लि !  
 भूमि तायियु तन्न हसुळेगळनेल्ल  
 शिशु प्रदर्शनकेंदु कळुहिसिहळिल्लि !  
 मृण्मयद हृदयदलि चिन्मयनिहनु एंदु  
 जडवनेदिगू चेतन गेलुवुदेंदू,  
 मागि मुगिदोडनेये सुगिग बरुवुदु एंदु  
 नेच्चुगेडदेये मुंदु मुंदके नडे एंदु,—  
 नळनळिसुतिरे केंदळिरिनैसिरिय सिरि  
 सारुतिहळी दिव्य तरुकला सुंदरि ! ॥२॥

## ७. रक्त पल्लव

[ 'कुवेम्पु' जी प्रकृतिको ही परमात्मा, प्रकृतिकी आराधनाको ही परमकी आराधना माननेवाले रहस्यवादी कवि है। मानव हृदयकी अनन्त पिपासा, अनन्त जिज्ञासा प्रकृतिकी गोदमें शान्त होती है। प्रकृतिमें साक्षात् हुए प्रभुको न देखकर काशीधाम आदि पुण्यस्थलोंकी यात्रा करनेवाले मूर्ख है। इस तलके पल्लवमें कोटि कार्शिकी पवित्रता है, सैकड़ों योगियोंके ज्ञानका सार इधर निहित है। इधर सभी चेतनामय है। जड़ नामकी कोई वस्तु है ही नहीं। इस प्रकार प्रकृतिमें सर्वत्र प्रभुकी झाँकी पाना 'कुवेम्पु' जैसे रस-सिद्ध कवीश्वरके लिए ही सम्भव है, प्रकृति एवं पुरुषके साथ आत्माका तादात्म्य बहुत ही मार्मिकताके साथ व्यञ्जित है। ]

आह, उधर खड़े होकर देखो न। उस तरुके सौन्दर्यमें स्वर्ग ही फूल रहा है, नहीं-नहीं मानो स्वर्ग ही धरापर उतर आया है। उर्वशी-तिलोत्तमा आदि अप्सराएँ उधर आकर नर्तन करती हैं, उस तरु पल्लव रूपी इन्द्रके दरबारमें मैं अपने पाँवोंको उठानेमें असमर्थ हो एक वृक्षकी भाँति विजड़ित होकर खड़ा हूँ। हाय, मैं तुमसे गिड़ गिड़ाकर प्रार्थना करता हूँ कि इधर आकर जरा खड़े रहकर देखो न। उस तरुसे चैतन्यकी निर्झरिणी फूट पड़ी है ॥१॥

मैंने जितनी सुन्दरियोंको देखा है, उन सबके रक्तोष्ठ इधर आकर सम्मिलित हो गए हैं। वसुन्धराने अपने अबोध शिशुओंको इधर शिशु प्रदर्शनार्थ भेजा है। यह दिव्य तरुकला सुन्दरी इधर खड़ी होकर घोषणा कर रही है कि मृण्मयके हृदयमें चिन्मयका चिरन्तन निवास है, जड़पर चैतन्यकी सदा विजय होगी, शिशिरके पश्चात् वसन्तका आगमन जरूर होगा, अविचलित हो आगे बढ़ो। इस प्रकार लहलहाते रक्त पल्लवके बीचसे यह दिव्य तरुकला सुन्दरी घोषणा कर रही है ॥२॥

आः ! नितु नोडिल्लिः

नूर ऋषिगळ बोधनेय सारविहुदिल्लि ;

नूर वंरागिगळ संसारविहुदिल्लि !

बुद्धिमतिमद सिद्धि भावगोचरविल्लि !

व्यक्तित्ववे ज्वालेया गुरियुवुदु इल्लि !

कोटिमैलिंगळाचे काशियात्रेगळेके ?

इल्लिगैतरु, यात्रिकने, इदुवे तरुकाशि !

रसतीर्थदलि मिदवगे भवद भयवेके ?

पुण्यदालय पृथिव ! स्वर्गवदु परदेशि !

॥३॥

-----

आह, खड़े होकर जरा इधर देखो न ! सैकड़ों योगियोंके बोधका सार ही इधर निहित है। सैकड़ों विरागियोंका संसार ही इधर है। बुद्धिसे परे जो सिद्धि है, वह भावगोचर हो रही है। व्यक्तित्व ही ज्वाला बनकर इधर जल रहा है। करोड़ों मीलकी दूरीपर काशी क्यों जाते हो ? हे यात्री इधर आओ, यही तरु काशी है। रस तीर्थमें अवगाहन करनेवालेको भवका भय कैसा ? ऐसी सुन्दर विभूतियोंसे मण्डित पृथ्वी वास्तवमें पुण्यका आलय है। इसकी तुलनामें स्वर्ग भी परदेशी है ! ॥३॥

---

## ८. आह्वान-वाणी

करेयुतिदे ओ! दूरदाह्वानवाणि !  
असीम आकाशद सुनीलवाणि !

हृदय बीणेय मृदुल तंतियनु मिडियुतिदे ;  
युगयुगांतरद मौनवनु कडेयुतिदे ।  
मनद एकांतदलि मलगिरुव होंगनसु  
मोदलु तोदलुव हसुळ्यंते नुडियुतिदे ! ॥ १ ॥

मधुर सुखबोंदु हा ! मधुरतर दुःखदलि  
विरहवनु केरळिसुते संयोगकेळेसुतिदे !  
मातुगळनापोशिसुव भव्य मौनदलि  
सिद्धांत संदेहगळु मूकवागुतिदे ! ॥ २ ॥

नभद सिङ्गिलेरगि मैमरेवंते तिरैयपशु  
मौन पीडित चित्ते मूर्छे होगुतिदे ।  
हे मौन, हे शांति, हे शून्य नीलिमेये,  
कनसोडेदु ननसु बरि नीलवागुतिदे !  
करे युतिदे ओ ! दूरदाह्वानवाणि !  
असीम आकाशद सुनीलवाणि ! ॥ ३ ॥

## ८. आह्वान वाणी

[पन्तजीकी भाँति 'कुवेम्पु' जी भी प्रकृतिकी रम्य छटासे मौन निमन्त्रण पाते हैं। 'कुवेम्पु' जी भी अनन्त आकाशकी असीम नीलिमामें किसीका अस्पष्ट आभास पा रहे हैं। कोई अज्ञातवाणी नभ-नीलिमाके रूपमें कविको निमन्त्रण दे रही है। उस मौन वाणीको सुनकर कविकी हृत्तन्त्री झंकृत हो उठती है, कविके युग-युगोंका मौन फूट पड़ता है। अज्ञात सत्ताका आभास पाकर, उससे मौन निमन्त्रण पाकर भावुक कविके हृदयमें भावकी जो उर्मियाँ उद्रेलित हो उठीं, उसकी मार्मिक व्यञ्जना इस कवितामें है। ]

ओह, कोई दूरकी आह्वान वाणी मुझे निमन्त्रण दे रही है।  
असीम आकाशकी सुनील कान्ति ही वाणी बनकर मुझे बुला रही है।

वह मौन वाणी मेरे हृदयकी मृदुल तन्त्रियोंके तरल तारोंको स्पन्दित-प्रस्पन्दित कर रही है। मेरे अन्दरके युग-युगान्तरोंके मौनका मन्थन कर रही है। मनके एकान्तमें, मनकी अतल गहराइयोंमें जो स्वर्ण-स्वप्न सोए हुए हैं, वे शिशुकी प्रथम जल्पनाकी भाँति तुतला रहे हैं। ॥१॥

एक प्रकारका मधुर सुख मधुरतर दुःखमें, वेदनामें विलीन होकर विरहको जगाकर, संयोगके लिए आकुल-व्याकुल कर रहा है। वाणीका आपोशन लेनेवाले भव्य मौनके समक्ष सभी सिद्धान्त सन्देह मूक बन रहे हैं। ॥२॥

जिस प्रकार नभसे तड़ित् गिरकर अदृश्य हो जाती है, उसी प्रकार इस लोककी पशु मौन पीड़ित चिन्ता मूर्च्छित हो रही है। हे मौन ! हे शान्ति !! हे शून्य नीलिमा !!! स्वप्न भंग हो गया है, वास्तविकता केवलनी लिमामय बन रही है, निमन्त्रण दे रही है। ओह, कोई सुदूर एवं अस्पष्ट आह्वान वाणी, असीम आकाशकी सुनील वाणी मुझे बुला रही है, आमन्त्रण दे रही है। ॥३॥

## ९. हण



हणवनुगळिसेंदणनिगेल्लर बुद्धिय हेळुवरेकम्मा !  
हणवेंदरे नावाडुव मण्णन पुडिगितलु चेलुवेनम्मा ? ॥१॥

धूळिनष्टु अदु नुण्णगिहुदे हेळम्मा ?  
धूळिनष्टु अदु सण्णगिहुदे हेळम्मा ? ॥२॥

धूळियंते अदु गाळियल्लि हाराडुबल्लुदे तिळिसम्मा ?  
धूळियंते अदु हुडुगरेल्लरनु ओळियबल्लुदे हेळम्मा ? ॥३॥

बेळगिन नेसरिनेळबिसिलिन मुद्दनु हण मीरिहुदेनम्मा ?  
एळे हसुरलि दिनवू नावायुव हूगळ मीरिहुदेनम्मा ? ॥४॥

मळेय बिल्लिनोलु मनव मोहिपुदे हेळम्मा ?  
मळेय हनिगळोलु नम्म कुणिसुवुदे हेळम्मा ? ॥५॥

हनियोळु मिदिह तळिरलि नलियुव हिममणिगदु चेलुवेनम्मा ?  
तळितिह बनदलि उलयुव कोगिलेच्चिचरकदु इंपेनम्मा ? ॥६॥

## ९. पैसा



[ पैसा बच्चोंका प्यारा और सबके नयनोंका तारा है। पैसा वैसे तो सबको नाच नचाता है, किन्तु सौन्दर्य प्रिय कविका किशोर मन पैसेपर मुग्ध नहीं होता। उसके प्रश्नोंमें चिरन्तन एवं अविनाशी सौन्दर्यकी मार्मिक व्यञ्जना है। सब अनर्थोंका मूल अर्थ, इस शिशुके सामने धूलसे भी नगण्य है। 'कुवेम्पु' जीके काव्यकी विशेषता एक मोहक शिशुका बयोविलास है। उसकी स्वभावोक्तिके समक्ष सौ-सौ अलंकार न्यौछावर है। ]

माई, 'पैसा कमाओ, पैसा कमाओ'—भाईको इस प्रकारका उपदेश लोग क्यों देते हैं? क्या यह पैसा हम जिस धूलिके साथ खेलते हैं, उससे भी सुन्दर है? ॥१॥

बताओ माँ, क्या वह धूलकी भाँति चिकना है? क्या वह धूलकी भाँति मुलायम है? क्या वह छोटा है? ॥२॥

बताओ माई, क्या वह धूलकी भाँति हवामें उड़ सकता है? क्या वह धूलकी भाँति सब लड़कोंके पास आ सकता है? क्या वह सब लड़कोंको प्यारसे सहला सकता है? सब बच्चोंको प्यार कर सकता है? ॥३॥

माँ, बता, क्या वह उदय रविकी बाल छबिके सौन्दर्यसे भी बढ़कर है? हरीतिमासे, हरे-हरे पौधोंसे, रोज हम जो फूल चुन लेते हैं, उनसे भी बढ़कर है क्या वह पैसा? ॥४॥

बोल माँ, क्या वह इन्द्र धनुषकी भाँति हमारे मनको मोहित कर सकता है? वर्षाकी बूंदोंकी भाँति क्या वह हमें नाच नचा सकता है? ॥५॥

क्या वह हिमार्द्र पल्लवोंपर क्रीड़ा करनेवाले तुहिन कणोंसे भी सुन्दर है? पल्लवित-मर्मरित चैत्र काननमें कूजन करनेवाले कोकिल कण्ठसे भी क्या वह मधुर है? बोल री माँ, उसमें वह माधुर्य है क्या? बोल री माँ! ॥६॥

## १०. होसबाळिन गीते

सर्वरिगे समबाळु ! सर्वरिगे समपालु !  
 एंब नवयुगवाणि घोषिसिदे केळि !  
 युगयुगद दारिर्छभारदि बेन् बागि  
 गोळिडुव बड़जनरे, एळिरै एळि !  
 श्रीमंतरडिगळडिहुडियल्लि होरळाडि  
 कुसिदु कुगिगदरेल्ल संतसव ताळि !  
 कंगेट्ट सोदररे, बरुतिहळु काणिरै  
 दानवर सीळि अदो विप्लवद काळि ! ॥१॥

इंद्र सिंहासनके बंदिहुदु कोनेगाल ;  
 कळचि बीळुवुदिंदु नंदनद बेलि !  
 देवतेगळ श्लीलमोदक्के बदलागि  
 गोचिरिपुदल्लि मर्त्यर कृषिय केलि !  
 द्रव्यानुकूलतेय जातिया नीतिया  
 पक्षपातवनेल्ल कोच्चुवुदु बुद्धि :  
 मत्तोदु नाकवने नेय्युवरु लोकदलि  
 देवर न्यायवनु मानवरे तिद्दि ! ॥२॥

## १०. नव जीवनका गीत

[ 'सुन्दरम्' का कवि युग विशेषके हर्ष विषादोंके प्रति अन्यमस्क हुआ सौन्दर्य पूजामें मग्न रहा। फिर भी युगकी कठोर वास्तविकताने कविके स्वप्न सौधको झकझोरा है। फलतः कवि अपनी नक्षत्र यात्राको छोड़कर वास्तविक जीवनके प्राङ्गणमें उतरकर सञ्चार करने लगा। युगके अवसादसे खीझकर कवि एक नवीन जीवन दर्शन ले आता है। फलतः उसकी वाणी युगवाणी बनती है। उसकी वाणीमें प्रलयकी लय है, विप्लवका गर्जन है; समाजमें उथल-पुथल मचानेकी क्षमता है। ]

'सबका सम जीवन, सबका समभाग,' वाली नवयुग वाणी घोषित हो रही है, सुनिए। युग-युगोंके दारिद्र्य भावसे नमित-दमित एवं सन्तप्त हो हाहाकार मचाने वाले दीन-दरिद्र जन! उठिए, ऊपर उठिए!! धनवानोंकी चरण-रजम लोटनेवाले, तड़पनेवाले, कराहने वाले दरिद्र जन! अब आनन्द मनाइए, मोदमग्न हो जाइए! हे सन्तप्त सोदरो! काली आ रही है, उधर देखिए, दानवोंका दलन कर, विप्लवकी भयंकरी काली आ रही है!! ॥१॥

आज इन्द्र सिंहासनका अवसान आसन्न है। देवताओंकी क्रीड़ा भूमि, नन्दनकाननका प्राचीर आज ढह जाएगा, टूक-टूक हो जाएगा। देवताओंके अश्लील आमोदके बदले उधर मर्त्योंकी कृषि केलि गोचर हो जाएगी। द्रव्यानुकूलता, जाति-नीति आदि पक्षपातोंको आधुनिक बुद्धि चकनाचूर कर रही है। हम इसी लोकमें एक नूतन स्वर्गकी स्थापना करेंगे। देवताओंके द्वारा किए गए अन्यायका बदला मानव ही लेंगे और उनका सुधार करेंगे ॥२॥

कैलागदवरेंब नावु कीळेंदेंब  
 हणे बरहवेंदेंब मूढतेय नीगि  
 युगचक्र परिवर्तनेगे सर्वरु सेरि  
 हेगलु कोट्टो मनसु माडि नेरवागि !  
 मोहिनिगे मरुळागि मूर्ख दानवरेल्ल  
 तम्म गेयमेय पालनन्यरिगे तेत्तु  
 सत्तंते सायदिरिः संस्कृतिय हेसरिंदे  
 श्रीमंतरोड्डुवा बले निमगे मृत्यु ! ॥३॥

इंदु नेत्तरु चेल्लि मुंदे बह मक्कळिगे  
 होट्टेगन्नव, मैगे बट्टेय नीडि ।  
 इंदु नोवादरू इंदु सावादरू  
 मुंदे बाळिगे सोगसु नेम्मदिय माडि ।  
 इंदु नीवेळदिरे केच्चेदेय ताळदिरे  
 निम्मवर बाळु एंदेंदिगू हेडि !  
 “ इंदु रक्तद बिंदु मुंदे सौख्यद सिधु ! ”  
 एंदु साहसकेळि, हिंजरियबेडि ! ॥४॥

हम कमीने हैं, दुर्बल हैं, नीच जातिके हैं, ललाट-लिपि इस प्रकारके नैच्यानुसन्धान एवं मूढ़ताको त्यागकर युग चक्र परिवर्तनमें सब मिलकर कन्धे-से-कन्धे मिलाइए, मन लगाकर इस क्रान्तिमें योग दीजिए। जिस प्रकार मोहिनीके सौन्दर्यपर लट्टू हो अपने श्रमके फलको दूसरोंको देकर सब मूर्ख दानव मरे, उस प्रकारकी मौत आप न मरिए। संस्कृतिके नामपर पूंजीपति, धनवान जो जाल आपके समक्ष बिछाते हैं, वही आपकी मृत्यु बनेगी, जागरूक रहिए ॥३॥

आज अपने शरीरके रक्तको बहाइए ताकि भविष्यमें आपकी सन्तानको पेटभर अन्न मिले, तन ढाँकनेको वस्त्र मिले। आज आपको यन्त्रणाओंका सामना करना पड़ता है, हँसते-हँसते मृत्युसे खेलना पड़ता है, किन्तु भविष्यके जीवनको सुखमय बनाइए। यदि आज आप चूकेंगे, उठ खड़े नहीं होंगे, तो आपका जीवन सदैवके लिए क्लीव एवं कातरताका जीवन बन जाएगा। आजके रक्तका बिन्दु भविष्यके सुखका सिन्धु बनेगा। इस प्रकारके अदम्य विश्वाससे आपूरित हो, ताल ठोंककर उठिए, साहस कीजिए; कभी हिचकिचाना नहीं, उठिए, शीघ्र उठिए !! ॥४॥

---

## ११. कालिक

निद्वेय लोकदि कनसिन बीदि ।  
 तिरुगिदे, तोळलिदे, तप्पितु हादि !  
 मुंदे काणिसित्तोदु अरण्य,  
 अनन्तवाद्दु वन विस्तीर्ण ।  
 हेम्मरगळु किक्किरिदु अल्लि,  
 बिडुविल्लदे हेणोदिदुदुवु बळ्ळि;  
 मुळ्ळिन पोदेगळु, पोदेगळु, गरगसवळ्ळि,  
 प्रतदत्ते पापासिन कळ्ळि !  
 नुगिदे नाना हळुविनलि,  
 आ कनसिन हेग्गाडिनलि ॥१॥

अल्लिदुदु बेळकेंबुवुदल्ल,  
 कत्तलु अल्ल !  
 बेळको कत्तलो शिवने बल्ल !  
 शिवने बल्ल !  
 प्रेतगळंददि भीतिय छाये  
 सुळिसुळिदाडितु अल्लि,  
 आ घोर काननदल्लि !  
 नडेदे नडेदे नडेदू नडेदे,  
 साहस बिडेदे एदेगेडे ।  
 सुत्तलु मौन !  
 इमशान मौन ! ॥२॥

## ११. कल्कि

[ सौन्दर्य प्राण एवं स्वप्नद्रष्टा कविको उसके स्वप्न ही जीवनकी कठोरताका परिचय कराने लगते हैं । जीवनके कुरूप, मलिन, कुण्ठा तथा पीड़ित-प्रताडित जनताके क्रन्दन, आक्रोश एवं प्रतारणाका रौद्र मूर्तिमान बने समाजको नष्ट भ्रष्ट करने आते हैं, जीवनके कुरूपोंपर, समाजके जीर्ण-शीर्ण पणोंपर अग्निचरण धरे कल्कि आता है । वह प्रचण्ड बुभुक्षा एवं अति शोणित तृषासे मुँह बाये आता है । उसके आगमनकी आभाकी वेलामे समाजके सब शोषणकर्ता धर्मसे नष्ट भ्रष्ट हो मिट्टीमें लटने लगते हैं । युग विशेषके अवसाद-विद्या एव आक्रोशको वाणी देनेमें कवि विराट् प्रतकों एवं वक्र भङ्गिमाओका सफल प्रयोग करता है । भारतीय प्रगतिवादी कविताको महाकवि ' कुवेम्पु ' ने जीवनकी यथार्थ चेतनाका आधार दिया है । युगकी इतनी सशक्त अभिव्यक्ति कदाचित् ही किसी भाषामें हो ! ]

निद्रा-लोकमे स्वप्नकी वीथियोंमें मैं मारा-मारा फिर रहा था, भटक रहा था और अन्तमें पथ-भ्रष्ट हो गया । समक्ष एक बृहत् अरण्य दिखाई दिया, उस वनका विस्तार अनन्त था । उधर बृहत् वृक्षोंका घना समूह था । बेल-लताएँ घने रूपमें जम गई थीं, कंटीली झाड़ियाँ प्रेतकी भाँति विकट रूप धरे खड़ी थीं । मैं उस अरण्यमें घुस पड़ा ; उस स्वप्नकी कठोर अटवीमें ॥१॥

उधर न रश्मि ही थी, न अन्धकार ही था । अन्धकार या प्रकाश ईश्वर ही जाने, ईश्वर ही जाने । प्रेतोंकी भाँति भीतिकी विकट छाया उधर उस घोर काननमें भटक-भटक रही थी । मैं चला चला, चलता ही रहा । मैं अधीर न बना, साहसके साथ चला ; सर्वत्र मौन, स्मशान मौन धाय-धायकर व्याप्त था ॥२॥

काङ्गु दाटिदे : मुंगडे बेट्ट;  
 शिखरवो नितिदे मुगिलिन मुट्ट !  
 हत्ती हत्ती हत्ती हत्ति,  
 कङ्गेलि सिक्कित्तु नडुनेत्ति !  
 नोङ्गिदेनल्लि,  
 नडुनेत्तियलि ! --  
 यावुदो ऊरु ? आ ऊरु !  
 बरि मायद ऊरु ! ॥३॥

धनिकर मनेगळु ओंदळु नितिचे,  
 बङ्गवर गुडिसिल्लु ओंदडे नितिचे ।  
 ज्योतिय मणिदीपगळल्लि;  
 कत्तलु, कग्गत्तलु इल्लि !  
 हाडिन नुण्दनियत्त,  
 गोळिन नीळदनियत्त !  
 कूळनु हेम्मेगे बिसुडुवरल्लि,  
 होट्टेगे इल्लदे कोरगुवरिल्लि !  
 आ कडे उद्यान,  
 ई कडे श्मशान ! ॥४॥

पीतांबरगळ होदेयुवरल्लि,  
 कौपीनके च्चिदियु सिगदिल्लि !  
 नोडुत नोडुत नोडुत्तिट्टे;  
 नोडुत्तिरेयिरे बेच्चि बिट्टे :  
 बङ्ग बगर जठराग्नियु एट्टु,  
 गुडिसल्लुगाळेगे बेक्कियु बिट्टु,  
 धग धग धग धग होत्तिट्टु,  
 भुगि भुगिल्लेत्तुत्त मुत्तिट्टु !  
 मुगिलिन वरेगू, बानिन वरेगू,  
 दिक्कु दिक्कुगळ जुट्टिनवरेगू ॥५॥

मैंने उस भयंकर अटवीको पार किया । समक्ष ही पर्वत था । उसका शिखर व्योमचुम्बी था । चढ़ा-चढ़ा, चढ़ता ही रहा, चढ़ते-चढ़ते अन्तमें पहाड़की चोटीपर पहुँचा । उस चोटीपर मैंने कोई नगर देखा । हाँ, कोई नगर, जादूगरोंका नगर फैला हुआ था ॥३॥

धनिकोंके घर एक ओर खड़े हैं, तो दूसरी ओर है दरिद्रोंकी कुटीरोंकी पंक्ति ? उधर ज्योतिके रत्नदीप जगमगा रहे हैं, इधर अन्धकार ही अन्धकार है । उधरसे मधुर संगीतकी तान सुनाई पड़ रही है तो इधर हाहाकार मचा है, कराह-ऋन्दन सुनाई दे रहे हैं । उधर धनवान धनोन्मत्त होकर अन्नको फेंक रहे हैं, इधर निर्धन दाने-दानेके लिए लालायित हैं । उस ओर उद्यान है और इस ओर श्मशान है ॥४॥

उधर पीताम्बरका परिधान है, तो इधर कौपीन के लिए गुदड़ी भी दुर्लभ है । इन सबको मैं देखता रहा, देखता ही रहा । देखते-देखते मैं ठिठक गया । दीन-दलितोंकी जठराग्नि ऊपर उठी । परिणामतः कुटीरोंमें आग लग गई । आग धधक रही है, सुलग रही है । आग सर्वत्र व्याप्त हो रही है । अपनी लोल-लोल लोहित जिह्वाओंको सर्वत्र फैला रही है वह आग भूमि और आकाशमें आपूरित हो रही है । दिग्दिगन्तोंमें, दिशाओंके छोरोंका स्पर्श किए दीन हृदय-जन्य उस अग्निने अपनी लोल जिह्वाओंसे निगल लिया ॥५॥

बड़वर बेंकियु नालगे चाचि ?  
 श्रीमंतरनप्पितु बाचि !  
 बड़वर सिट्टट्टु एनु पिशाचि !  
 बड़बागिनयु तले तगिगतु नाचि !  
 श्रीमंतर सौधगळ नेत्ति  
 सीदुदु बड़ होट्टेय उरि हत्ति ।  
 दूरद आ गिरिशिखरद मेले  
 ननगू तट्टिट्टु बेंकियु ज्वाले !  
 कोळिसितोडनेये हाहाकार ! ॥६॥

मक्कळु मरिगळ चीत्कार !  
 गर्भिणि स्त्रीयरु, बाणंतियरु,  
 नववधुगळु मेण् श्रीमंतेयरु,  
 हुडुगरु, मुदुकरु, कुंटरु, किवुडरु,  
 बड़वर गोळनु केळद किवुडरु,  
 होट्टेय पाडिगे कावियनुट्टु  
 बड़वर हसिविगे मौढ्यव कोट्टु  
 सुख संपत्तनु कोंडवरु,  
 मृष्टान्नवने उंडवरु,  
 गुरुगळु, शिष्यरु, मनेगळु, मठगळु,  
 एल्लरु बेंदरु बड़बागिनयलि,  
 बड़वर बगर जठरागिनयलि !  
 बड़वन जठरागिनये बड़वाग्नि !  
 बड़वने कलियुगदंत्यद कल्कि ! ॥७॥

धनवानोंको भी उसने अपनेमें समेट लिया । दीन-दलितोंका क्रोध कितना भयंकर पिशाच है ! उस विकट पिशाचकी भयंकरताके सामने दावाग्निका मुख भी लज्जासे नत हो गया । धनवानोंके महलोंके शिखर दीन दरिद्रोंकी जठराग्निमें जलकर भस्म हो गए । दूर-सुदूर उस गिरि-शिखर पर स्थित मुझे भी उसकी आँच लगी । उन लोगोंका हाहाकार मुझे भी सुनाई दिया ॥६॥

शिशुओंके चीत्कार मेरे कानके परदोंको फाड़ रहे थे । गर्भिणी स्त्रियाँ, प्रसूतिका रमणियाँ, नव वधुएँ तथा सेठानियाँ, बालक, वृद्ध, लंगड़े-लूले, काने-बहरे तथा दीन दरिद्रोंके क्रन्दनको अनसुना करनेवाले बहरे, उदरके निमित्त काषाय वस्त्र धारण कर दीनोंको मौढ्य दान कर सुख सम्पत्तिको लूटनेवाले, मिष्टान्न ही खानेवाले, गुरु जन, शिष्यजन, घर, मठ, मन्दिर सबके सब उस जठराग्निमें जलकर राख हो गए । गरीब की जठराग्नि ही बड़वाग्नि है ! गरीब ही कलियुगका युगान्तकारी कल्कि है ! ॥७॥

नोडुतलिद्दे ;  
 नोडुतलिद्दे !  
 कण्मरेयायितु आ दृश्य !  
 एनिदु ई दृश्य ?  
 रक्तद जलपात ।  
 नर मांसद नात !  
 धुमुधुमुकुतलिदे रक्तद रणधुनि !  
 होरहोम्मुत्तिदे नररार्तध्वनि !  
 गगनवु रक्त ? भूमियु रक्त !  
 नोड़िदेत्तलु रक्त ! रक्त !  
 अय्यो रक्त !  
 धुमुकुव शोणित गिरि झरियल्लि,  
 नर हंडगळु  
 नर मुंडगळु ॥८॥

मंगारगालिद बलसरियल्लि  
 आलिम कल्लुगळुरुळुरुळवंते  
 धुमुकुतलिरुवुवु ! बंडेगळंते  
 धुडुं धुडुं धुडुम्मने बिद्दु  
 हास्तलिवे बिसिनेत्तरु, सद्दु !  
 सुंदरियर तलेमंडेगळु,  
 श्रीमंतर नेणदुंडेगळु,  
 पापद देह, पुण्यद देह ॥९॥

मैं यह सब देखता रहा ! देखता ही रहा ! वह दृश्य आँखोंसे ओझल हो गया । और अब मैं यह क्या देख रहा हूँ ! यह कैसा दृश्य है ? आह ! रक्तका जल प्रपात ! नर-मांसकी असहनीय दुर्गन्ध ! रणोन्मादसे झर-झर गिर रहा है वह रक्त ! नर-नारियोंका हाहाकार मचा है, आर्तनाद सुनाई दे रहा है । हाय ! हर कहीं रक्त ! रक्त-सिक्त गगन, रक्त-रञ्जिता धरित्री !! अत्र-तत्र-सर्वत्र रक्त ही रक्त है ! हाय रक्त ! प्रचण्ड वेगसे झरनेवाली उस शोणित गिरि-निर्झरिणीमें नर रुण्ड-मुण्ड झुण्ड-के-झुण्ड टपक कर गिर रहे हैं ॥८॥

वर्षाकालीन घोर वर्षामें करकापातकी भाँति ये रुण्ड-मुण्ड शीघ्रतासे लुढ़क रहे हैं । चट्टानोंकी भाँति नर रुण्ड-मुण्डोंके झुण्ड धड़केसे गिर रहे हैं । उष्ण लहूकी बूँदें चारों ओर छिटक रही हैं । भयंकर विस्फोट हो रहा है । भीषण रव सुनाई दे रहा है । सुर-सुन्दरियोंके मुण्ड, धनवानोंके मज्जा पिण्ड, क्या पापियोंकी, क्या पुण्यात्माओंकी सबकी देह . . . . . ॥९॥

गुडि गोपुरगळ, धर्मद गेह,  
 तेलि, तेलि, तेलि, तेलि  
 नुगुतलिवे कसकडिडय होलि !  
 यारवनल्लि ? दूरदल्लि,  
 धाविसि बरुवनु क्रौर्यदलि !  
 आस्थि पंजरददववनेरि,  
 बेळ्ळगे चिलियुव दाडेय तोरि,  
 आस्थिपंजरदाळवनु !  
 प्रेतस्वरूपियदारवनु ? ॥१०॥

बलगडे कैयलि मिचिन कत्ति !  
 एङ्गडे कैयलि सिङ्गिलिन बुत्ति !  
 एलुबिन कुदुरे ! एलुबिन आळु !  
 इवनेये कल्कि ? बडवर बाळु !  
 मूर्तिवेत्तिहबडवर गोळु !  
 नोडुतलिद्दे,  
 केळुतलिद्दे ! ॥११॥

हसिवे ! दाहा ! एन्नुत बंदु,  
 रक्ता ! रक्ता ! रक्ता ! एंडु,  
 नेत्तरु होळ्येलि धुमुकिदनु,  
 कुदुरेयोडने धुम्मिकिदनु !  
 कुडिदनु रक्तव मोगे मोगेदु,  
 तिदनु तलेगळ तेगे तेगेदु ! ॥१२॥

मन्दिर, गोपुर, धर्मके आगार इस रक्तकी भयंकर बाढ़में तैरते हुए, डूबते हुए, आप्लावित हो कूड़े-करकटकी भाँति, तिनकेके समान तैर रहे हैं। ओह! उधर कौन है? (क्रूरताके कारण नेत्रोंसे आग उगलते हुए,) उसपर कोई दौड़ा चला आ रहा है। वह प्रचण्ड व्यक्ति भयंकर अस्थि-पञ्जरके अश्वपर आरूढ़ है। चमकती हुई दाढ़ोंसे दर्शककी आँखोंमें चकाचौंध पैदा करते हुए वह कंकालके ढाँचेमें काल आ रहा है। वह प्रेत रूप कौन है? ॥१०॥

उसके दक्षिण हस्तमें विद्युत्का खड्ग है, वाम हस्तमें वज्रका पाथेय है! हाय! हड्डियोंका पुरुष हड्डियोंका घोड़ा! क्या यही दीनबन्धु कल्कि है! दरिद्रोंका, कंगालोंका प्राण क्या यही है? क्या यही उन दीन-दलितोंका तथा नग्न-भग्न मानवोंका मूर्तिमान कृष्ण है! मैं देखता ही रह गया, मेरे कान सुनते ही रह गए! ॥११॥

कल्कि आते-आते पुकार रहा है, भूख-भूख, प्यास-प्यास, रक्त-रक्त, रक्त दो, रक्त दो; इस प्रकार चीखते हुए वह अपने घोड़ेके साथ उस रक्त-नदीमें कूद पड़ा। वह रक्तको उठा-उठाकर गट-गट पीने लगा। असंख्य सिरोँको उठा-उठाकर, नोच-नोचकर उसने खा लिया ॥१२॥

एलुबिन कुदुरेयु केनेयुत्तित्तु;  
 नादवु बोम्मव बिरिवंतित्तु !  
 एलुबिन मूर्तियु गहगहिसित्तु;  
 गुडुगिन मालेये पोरमडुत्तित्तु !  
 कुदुरेयु कुडिदू आळू कुडिदू,  
 तिदरु शवगळ लरि लरि कडिदू !  
 बत्तित्तु रणधुनि, इन्नू दाह !  
 मुगिदुवु हेणगळ, इन्नू हसिवे ! ॥१३॥

बडवर गंटल बेगेय दाह !  
 बडवर होट्टेय बैकिय हसिवे !  
 तुंबदु होट्टे;  
 तुंबदु होट्टे !  
 केट्टे ! केट्टे !  
 अय्यो केट्टे !  
 नोडिदनेन्नं बेट्टद मेले  
 बरुतिहनय्यो ! ओल्ले ! ओल्ले !  
 नोडुतलिद्दे !  
 कंपिसि बिद्दे !  
 कल्कि ! कल्कि ! एन्नूत चीरि  
 कनसोडेदेद्दे ! —  
 इन्नेल्लिय निद्दे ? ॥१४॥

उसका अस्थि पञ्जरका अश्व हिनहिनाने लगा । उसके हेषा रवसे अन्तरिक्षका वक्ष भी विदीर्ण हो उठा, ब्रह्माण्ड ही खण्ड-खण्ड होनेको था । उस अस्थिपञ्जरमयी मूर्तिने ठहाका मारकर विकट अट्टहास किया । वह अट्टहास ऐसा था मानो प्रलय-मेघ ही फट रहे हों; मेघ गर्जनकी मालाकी भाँति लगा वह नाद ! घोड़ेने रक्त पिया, खूब पिया, भैरव कंकाल मूर्तिने भी खूब पिया । उस मूर्तिके अश्वने शवोंको चीर-चीरकर, काट-काटकर, नोच-नोचकर खाया । रक्तकी नदी सूख गई; किन्तु उनकी अदम्य पिपासा नहीं बुझी । वहाँके सब शव खत्म हो गए, किन्तु उनकी भूख अमिट ही रही ॥१३॥

गरीबोंके दग्ध-कण्ठीकी, जले गलेकी प्यास और उनके जठराग्निकी बुभुक्षा, अदम्य बुभुक्षा मिटी नहीं, क्षुधाग्नि धधकती ही रही । उनके पेट भरे नहीं, फिर भी भरे नहीं, हाथ में बरबाद हो गया, मेरा सत्यानाश हो गया ! कल्किने उधरसे पर्वत शिखरपर स्थित मुझे देख लिया । मुझे हूँदती दौड़ी आ रही है वह भीषण मूर्ति ! नहीं, नहीं, मेरा स्पर्श न करना ! मुझे छोड़ दो, मुझे छोड़ दो, मुझे छोड़ दो ! मैं गिड़गिड़ाया ! मेरी आँखें उधर ही गड़ी हुई थीं । प्रयत्न करनेपर भी उन्हें उधरसे फिरानेमें मैं सफल न हो सका । मैं सिहर उठा ! मेरे रोम-रोम काँप उठे । कल्कि ! कल्कि ! ! इस प्रकार चीखते— चिल्लाते मैं थर-थर काँप उठा ! मेरा स्वप्न टूट गया ! मैं जाग पड़ा । और फिर अब मेरी आँखोंमें नींद कहाँ ! ॥१४॥

## १२. कोगिले मत्तु सोवियद् रष्या

सोवियद् रष्याक्के नानोम्मे होगिद्दे,  
 मनसिनल्लि ;  
 बंदिरलु गाढ निद्दे,  
 कनसिनल्लि ! --  
 श्रीमंतरिरिल्लल्ल ; श्रीमंतरे एल्ल !  
 आळ्वरसरिल्लल्लल्ल ; मेलु कीळुगळिल्लल्ल ;  
 केलसविल्लद अलसगारनिगे अल्लि कूळिल्लल्ल ;  
 केलसवेंदरे उसिरु ! केसलवे बाळेल्लल्ल !  
 आळु तनगागि ता दुडियबारदु अल्लि ;  
 दुडिमेयनिबरिगागि ; तानोब्बननिबरिल्लि !  
 सर्वमनुजरिगागि सृष्टि  
 एंब समदृष्टि ! -  
 एल्लवर सुखकागि गेय्यबेकेल्ल ;  
 आदरु सुखिगळेनगोब्बरु काणलिल्ल ! --  
 कैय गेयमेय बेवरु दणिवुगळिगदुबीडु ।  
 कनसेंदरागदवरिगे : "तळळु ! कनसनाचेगे दूडु !  
 आदरु मुंदे सोगवहुदेंदु हेगनसिनडिगळलि  
 कनसिना हगेगळेल्लरु कुरिगळंते बलि !  
 नोडुववरिगे दोड्ड जैलु ;  
 माडुववरिगो बरलिरुव सोगके सुग्गि कोयिलु ! ॥१॥

## १२. कोयल और सोवियत रूस

[ कुवेम्पुजीकी विराट् चेतना मार्क्सवादी आदर्शों तथा घोर यथार्थवादसे सन्तुष्ट नहीं हो सकी। उन्होंने यह अनुभव किया कि भारतीय वातावरणके लिए साम्यवाद हितकर नहीं है। भौतिक उत्कर्ष एवं यान्त्रिकताकी अपेक्षा आत्मिक उत्कर्ष एवं सात्विक दर्शनकी आवश्यकता है। अतः उन्होंने अपने पूर्व सिद्धान्तका बहिष्कार किया, अपने पुराने बानेको उतार फेंका। इस कवितामें मस्तिष्कके प्राबल्यके कारण हृदयपर होनेवाले अत्याचारके ऊपर कितनी मीठी चुटकी है, कितना सुन्दर कटाक्ष है! ]

मैं एक बार सोवियत रूस गया था, मनमें, गहरी नीदमें, स्वप्नमें!

वहाँ कोई रईस नहीं था, सबके सब रईस थे। शासन करनेवाले राजा-महाराजा वहाँ नहीं थे, राजा-महाराजा ही वहाँ नैकर-चाकर थे। उनमें कोई भी बड़ा छोटा नहीं है, ऊँच-नीचकी श्रेणियाँ नहीं हैं। बेकार रहनेवाले आलसीको वहाँ अन्न नहीं मिलता है। कर्म ही वहाँके रहनेवालोंका मूलमन्त्र है। कर्म ही उनका श्वास है। कर्म ही उनके जीवनका मर्म है। वहाँ लोग मानते हैं कि मनुष्यको अपने लिए मेहनत नहीं करनी चाहिए, मेहनत सबके लिए है। वहाँ व्यष्टि ही समष्टि है। यह सृष्टि सभी मनुष्योंके लिए है, इस प्रकारकी समदृष्टि है उनकी। सामूहिक सुखके लिए सबको कर्मरत रहना है; फिर भी मैंने किसीको भी सुखी नहीं पाया। हाथकी मेहनत, पसीना और थकावटका आगार है वह देश। स्वप्नसे उनको चिढ़ है। वे कहते हैं—सपनेके संसारको निकाल बाहर करो, फिर भी वे स्वप्नद्वेषी भविष्यकी सुख-सम्पदाके बृहत्स्वप्नकी धूमिल छायापर बलि चढ़ रहे हैं। भेड़-वकरोंकी भाँति उनकी बलि चढ़ाई जा रही है। देखनेवालोंको वह एक बृहत् कारा-गृहकी भाँति लगता है। किन्तु परिश्रमी कर्मियोंकी दृष्टिमें वह निरन्तर कार्यरत जीवन आगामी स्वर्गकी फसलकी कटाई है ॥१॥

मार्गर्दशिय कूडि नोडुत्त होदे;  
 नोडिदंतेल्ल ना बेप्पु बेरगादे :  
 यंत्र नागरिकतेय विज्ञान बुद्धि  
 तानल्लि पडेदित्तु परम सिद्धि ।  
 होलदल्लि मनेयल्लि हळिळयलि नगरदलि,  
 पंक्ति पंक्तिय यंत्रवेल्लि नोडिदरल्लि ।  
 देशवेल्लवू दोड्डदोंदु काखनि;  
 प्रतियोब्ब मानवनु यंत्रदंतिदाने !  
 मातनाडुवुदिल्ल यारोब्बरु ओंदु सोल्लु;  
 हरटेयलि कालकळेदरे शिक्षे—गल्लु !  
 उत्पत्ति, उत्पत्ति, उत्पत्ति मत्ते उत्पत्ति !  
 सोवियट्ट वंणवर धर्मकदु परम प्रपत्ति !  
 माताडलिल्ल नानोंदु सोल्लु;  
 एल्लियादरु तप्पि नुडिदरे तलेगे कल्लु ! ॥२॥

मार्गर्दशिय कूडे नडेदु मुंदे  
 कंडु सोजिगगोंडु नानेंदे :  
 “ एनदा करडि कपिगळ दोड्डमंदे  
 तिरुगुतिदे बयलिनलि हिंदे मुंदे ? ”  
 हेळिदनु अवनु कनिकरद नगेगूडि  
 पेच्चाद नन्न मोरेय तिविदु नोडि :  
 “ नररादरेनंते, मृगवादरेनंते ?  
 रष्यदलि सोमारिगेडेयिल्ल, कूळिल्ल;  
 प्राणिगळिगू इल्लि साम्यवादद चिन्ते !  
 दुडियदिरे मिडिहविकगादरु ओंदु काळिल्ल ! —  
 करडि कपिगळिगल्लि नडेयुतिदे ड़िल्लु,  
 मुंदे बरलिह समरकिदे समेयुतिदे बिल्लु-  
 बाळेंबुदोंदु निष्करण मिल्लु;

अपने मार्गदर्शकके साथ मैं देखते-देखते आगे चला। यह देखकर मैं दंग रह गया कि इस देशमें यान्त्रिक सभ्यता एवं वैज्ञानिक बुद्धि अपनी चरम सीमापर पहुँची हुई है। खेतोंमें, घरोंमें, गाँवोंमें, नगरोंमें, जहाँ देखो, वहाँ यन्त्र ही यन्त्र कलरव कर रहे हैं। समग्र देश ही बहुत बड़ा कारखाना बना हुआ है। प्रत्येक मानव वहाँ एक यन्त्रवत् है। कोई भूलकर भी मुँहसे एक शब्द नहीं निकालता। यदि कोई गप्पें हाँकनेमें समय बिताएगा तो बस उसे फाँसीपर लटका दिया जाएगा। उत्पादन, उत्पादन और केवल उत्पादन ही सोवियत वैष्णव-धर्मकी परम प्रपत्ति है। मैंने एक शब्द भी मुँहसे नहीं निकाला। इस डरसे कि यदि कहीं भूल-चूक हुई तो फाँसीपर लटकना पड़ेगा ! ॥२॥

मार्ग दर्शकके साथ मैं आगे-आगे चला। किसी वस्तुको देखकर मैं हैरान हो गया और पूछा—वह क्या है? बन्दर—भालुओंका झुण्ड-सा दिखाई पड़ रहा है। जो मैदानमें आगे पीछे घूम रहा है? आश्चर्य चकित मेरे मुखको देखकर वह बोला 'क्या नर, क्या बानर और क्या जानवर? रूसमें आलसियोंको जगह नहीं है।' उनके लिए हमारे देशमें अन्न नहीं है। यहाँ जानवरोंके सिरपर भी साम्यवादकी चिन्ता सवार है। बिना मेहनतके एक पंछीको भी वहाँ चारा नहीं दिया जाता। एक दाना भी उनको नहीं मिलता। भालू और बन्दरोंकी लिए इधर कवायद (Drill) चल रही है। भविष्यमें होनेवाले युद्धके लिए आजसे ही तैयारियाँ हो रही हैं। जीवन एक निष्करुण मशीन यहाँ है, 'मिल' है।

सर्व प्राणिगळदके बीसुवा नेल्लु;  
 एंबुदेम्मय तत्वदडिगल्लु !”  
 एंदु ना माताडलिल्लोंदु सोल्लु ।  
 नोडुत्त नोडुत्त नोडुत्त होदे होदे होदे;  
 अद्भुतद मेलद्भुतव कंडु बायिल्लदादे;  
 कत्ते हिंडिगे ओंदु कडेयल्लि साम्यवादद बोधे  
 भरदिद सागुतित्तु;  
 मत्तोंदु ताणदलि हंदियोदके कठिन शिक्षे;  
 किरेंदु कूगुतित्तु !  
 साम्यवादद नीतियनु मीरि तिंदितंते;  
 अर्दरिद आ हंदि क्यपिटलिस्टंते ! ॥३॥

मार्गदशिय करेगे मुंबरियुतिद्दे;  
 कालु कालिगे तगलि एडवि बिद्दे ।  
 मैफोडविकोळळुत फक्कनेये मेलेद्दु  
 नितिरलु, केळिसित्तल्लि पक्कदोळोंदु नरळु सद्दु ।  
 नोडिदरे आ संदणिय गलिबिलिय होरटेय मध्ये,  
 यंत्र संकुल कारुतिह धूममध्ये,  
 बिडुविरदे तिरुगुवा यान चक्रद धूळियल्लि,  
 हसुरेंब मरवेंब हेसरिरद आ ताणदल्लि,  
 अय्यो आ बट्ट बयलिन हाळु बहिरंगदल्लि,  
 कोगिलेयोंदु करंगे हुदुगि कूतित्तु;  
 कः पदार्थवदागि लक्ष्य बाहिरवागि नरळिकूतित्तु !  
 नळनळिप मामरद केंदळिरनुंदु  
 कुकिलुवा चैत्रदूतन दुःस्थिय कंडु  
 नोर्विनदलुगाडदे बेक्कसगोंडु । ॥४॥

सभी प्राणी उसमें पिसनेवाले दाने हैं। यही उनके तत्त्वकी नींव है। उससे बचकर चलनेवालेके सिरके चकनाचूर होनेमें देर नहीं लगती। उलटी बात करूँगा तो (सिरपर) पत्थर पड़ेंगे इस प्रकार समझकर मैं मौन रह गया। मैं एकटक देखता ही जा रहा था। एकके बाद एक अद्भुत, अनोखी वस्तुओंको देखकर मैं अवाक् रह गया। एक ओर गधोंके झुण्डोंको तेजीके साथ साम्यवादका उपदेश दिया जा रहा था। एक जगह एक शूकरको कठिन सजा दी गई थी। वह चिल्ला रहा था। सुना कि उस शूकरने साम्यवादकी नीतिका अतिक्रमण कर अधिक खा लिया था। अतः उन लोगोंने घोषणा कर दी कि वह 'कैपिटलिस्ट' है, पूँजीवादी है ॥३॥

मार्गदर्शक मुझे आगे-आगे ले जा रहा था। अचानक पैरमें ठोकर लगनेसे मैं गिर पड़ा, किन्तु तुरन्त ही उठ खड़ा हुआ। इतनेमें बगलमें किसीके कराहनेकी ध्वनि सुनाई दी। उस भीड़के शोर-गुलमें मैंने क्या देखा, जहाँ यन्त्रोंके समूह धुआँ उगल रहे थे। निरन्तर गतिसे फिरनेवाले यान चक्रकी धूलिमें, जहाँ हरियालीका नाम तक नहीं, वहाँ हाय उस शून्यमय बहिरंग प्रदेशमें, एक काली कोयल बैठी थी। वह किसी क.पदार्थ अकिञ्चनकी भाँति तड़पती कराहती हुई बैठी थी। हरी-भरी अमराइयोंमें आम्र मञ्जरीको कुतर-कुतरकर कल कूजन करनेवाली चैत्र दूती कोयलकी दुःस्थितिको देख अवर्णनीय वेदनासे आक्रान्त हो मैं प्रस्तर प्रतिमाकी भाँति खड़ा रहा ॥४॥

हेळितदु कण्णीरु करेदु  
 यंत्रपक्षिय तेरदिनिचरव तोरेदु  
 कर्कश ध्वनियिंदे मोरेदुः  
 “कविवर्यं, इदुवरेगे संसार कष्टगळनुळिदु,  
 सुखगळने मात्र तिळिदु,  
 वनवनव संचरिसि, हाराडि, हाडि,  
 हण्णु हंपलु तिंदु, बेटदलि जतेगूडि,  
 हेतु सलहुव होणेयनीडाडि,  
 कागेगळ गूडिनलि मोसदिं मोट्टेयिट्टु,  
 मरिगळारंकेयनु अवुगळिगे बिट्टु  
 नलिदिहे कवि स्तुतिय सूरे माडि ।  
 कागेगळो, (बुद्धियिल्लद प्रोलिटेरियट्टु !)  
 चंत्रदलि रट्टागुवन्नंगं गुट्टु  
 तम्म मरिगळकूळनन्यर्गे कोट्टु  
 कोळुहोगुत्तिदु बंदु जार इह युगदल्लि !  
 इंदु ई विपरीत कालदल्लि,  
 नन्न मोट्टेय मेले नाने काविगे कूतु  
 मरिमाडबेकेंदु सोवियट् ताकीतु !  
 मरद मेगडे गूडु कट्टिदरे साम्यवादके कुंदु,  
 हंदिगळ करुबिगू गुरियाग बेकेंदु  
 इल्लि मोट्टेयनिट्टु कावु कूतिहेने ;  
 मोत्त मोदलने होच्च होस चोच्चलनुभवके  
 कायुतिहेने ॥५॥

उसने आँसू बहाकर यन्त्र पक्षीकी भाँति माधुर्यसे शून्य कर्कश कण्ठसे कहा—हे कविवर, अबतक संसारके दुःखको त्यागकर मैंने केवल सुखका भोग किया। बन-बनमें उड़-उड़कर भटकती रही, पञ्चम तान छेड़ती रही, फल खाती अपने प्रियतमके साथ प्रणय लीलामें मग्न रही। सन्तानको जन्म देनेकी, उसके पालन-पोषणकी जिम्मेदारी छोड़कर मैं कौओंके नीड़ोंमें छिपकर अण्डे रख आती और उन बच्चोंकी देख-भाल उन्हें सौंपकर आनन्दसे रहती थी। कविजनोंकी प्रशंसा पात्री बनी थी। वे कौए बुद्ध, 'प्रोलिटेरियट' ठहरे न! चैत्रके आगमन तक, मेरी पोल खुलने तक वे अपनी मेहनतकी कमाई, अपनी सन्तानकी रोटी दूसरोंसे लुटने देते थे 'ज़ारयुग' में! किन्तु आज जब कि उलटी हवा बह रही है, मैं ही अण्डेपर बैठ गई हूँ। सोवियत सरकारने मुझे अपने अण्डेको आप ही सेनेकी आज्ञा दी है। पेड़पर घोंसला बनाना साम्यवादके नियमके विरुद्ध है, समानताका भंग करना है न! शूकरोंकी आँखोंसे बचानेके लिए मैं इधर बैठकर अण्डे से रही हूँ। प्रथम प्रसवानुभवकी प्रतीक्षामें मैं बैठी हूँ ॥५॥

कोगिलेय नुडिगळनु नंबलारदे मेल्लनदनेत्ति  
 नोडिदरे, कंडुवदो धूळिनलि एरडु करि तत्ति !  
 बागिदेन्नेय किविगे कोळिसितु कोगिलेय दीनवाणि :  
 “ ओंदु मोट्टेयनादरू कद्दु कोंडोय्यु निन्नूरिगे,  
 परपुट्टरिगे तवरुमनेयाद मैसूरिगे । ”  
 पाप ! बडप्राणि,  
 तन्नोंदु मरियादरू हाडि नलियलि एंदु  
 कन्नडद कळिबगन बेडितेंदु,  
 मार्गर्दाशिय कण्णे बीळदंते,  
 ओंदु मोट्टेयनेत्ति, जेबिगिळिबिट्टु, निते. . . . .  
 एल्ल नोडिद मेले  
 मार्गर्दाशियनु बीळ्कोंडु बरुवा बेळे,  
 जेबिनल्लिद्द कोगिले मोट्टेयनु कैयोळांते ;  
 नोडुतिरलु चिम्मि नेगेदिळिगे बित्तु ;  
 बिरिदय्यो चूरु चूराय्तु !  
 एन काणुतिहे नानेनगेनु भ्रांते ?  
 मोट्टेयिंदुद्भविसिदुदु कोगिलेय कंदनल्ल :  
 ( साम्यवाद महिमे ! मेणदर बोधे !  
 संतान परिणामवनु कंडु बेरगागि होदे ! )  
 मोट्टेयिदंतंदुदेनु ? पिकशिशुवल्ल !  
 मूडिबंदेन्न हिडिदनु सोवियट्टोब्व गूढचार ।  
 कोगिलेय मोट्टेयोळगू कूड साम्यवाद प्रचार ! ॥६॥



कोयलकी बातोंपर विश्वास न कर मैंने धीरेसे उसे ऊपर उठाया। देखता क्या हूँ कि धूलमें दो अण्डे पड़े हैं। मेरे कानोंमें उसकी दीन वाणी पड़ी 'हे कवि, कम-से-कम एक अण्डेको तुम अपने गाँव, कोकिलोंकी जन्म-भूमि मैसूर लेते जाना।

बेचारी कोयल गिड़-गिड़ाकर प्रार्थना कर रही थी ताकि कम-से-कम उसका एक बच्चा पले, सुखसे जिये, चैनकी वंसी बजाता रहे। अतः उसने कन्नड़के कविसे प्रार्थना की। उसकी दीन प्रार्थनाको अनसुना कर मार्गदर्शककी आँखें बचाते हुए मैंने एक अण्डा उठाकर अपनी जेबमें रख लिया और उठ खड़ा हुआ और जानेको तैयार हुआ।

सब कुछ देखनेके बाद मार्गदर्शकसे बिदा लेकर आते समय जेबमें रखे हुए कोयलके अण्डेको मैंने हाथमें उठाया। देखते-देखते वह अण्डा छल्लाँग मारकर धरतीपर गिर पड़ा। हाय! चकनाचूर हो गया! मैं क्या देख रहा हूँ, क्या मैं पागल बन गया हूँ? उस अण्डेसे कोयलकी सन्तान बाहर नहीं निकली! वाह री साम्यवादकी महिमा! वाह साम्यवादका प्रचार!! सन्तान-परिणामको देखकर मैं दंग रह गया। अण्डेसे आखिर क्या निकला! पिक शिशु नहीं; एक जासूस निकल आया और उसने मुझे पकड़ लिया। वाह, कोयलके अण्डेके अन्दर भी साम्यवादका प्रचार!! ॥६॥

## १३. रैत् रस्ते



बेसगेय बिसिलु मुडुतिहुदु मुडुमुडने ;  
 मूर्छे होगिदे भूमि नडुगि नडनडने !  
 हरियुतिदे बयलिनलि कंबि दारि  
 कर्कशद कटुनील कांतियनु कण्णे कारि :  
 दूर समदूरवागि,  
 दिड-मूर्लेयि बंदु दिडः मूलेगागि  
 वेगदिदोडुतिरुवेरडु काळाहिगळ होलि ;  
 नूतन नागरिकतेय यंत्रास्थिपंजरदि  
 ककब्बिणद हृदयक्के होत्तु रक्तव भरदि  
 प्रवहिसुव लौह रेखा नाळगळ होलि ;  
 कर्कशद कटुनीलकांतियनु कण्णे कारि  
 हरियुतिदे कंबिदारि ! ॥१॥

## १३. रेलका रास्ता

[ 'कुवेम्पु' जी हमारे महान् सांस्कृतिक कवि हैं। उनकी कविताओंमें भारतीय संस्कृतिका हृदय-स्पन्दन है और गुञ्जन है। आरण्यकोंके ऋषिकी औरस सन्तान यह कवि अनुभव करता है कि यान्त्रिक सभ्यता हमारी संस्कृतिका गला घोट रही है। इन यन्त्रोंके कारण हमारी शान्ति मिट रही है। मानव-हृदय यान्त्रिक प्रगतिके साथ सामञ्जस्य स्थापित करनेमें अपने को असमर्थ पा रहा है। इस असमर्थताका साथ ही इस यान्त्रिक सभ्यताके प्रति विद्रोहकी भावनाका चित्रण कवितामें हुआ है। ]

निदाघकी चिलचिलाती धूप चराचरोंको जला रही है। उसके प्रचण्ड तापसे कम्पित-विकम्पित हो भूमि मूर्च्छित हो गई है। मैदानमें पटरियोंका रास्ता चल रहा है। वह पटरी दर्शकोंकी आँखोंपर कर्कश एवं कटु नीलकान्तिका वमन कर रही है। दूर समदूरसे एक दिशाके कोनेसे दूसरी दिशाकी ओर दौड़ रही है, प्रचण्ड वेगसे काले नागोंकी भाँति दौड़ रही है। लोहेके हृदयके लिए रक्तका वहनकर शीघ्रतासे प्रवहमान लौह रेखा नालकी भाँति कर्कश एवं कटु नीलकान्तिको दर्शकोंकी आँखोंमें उगल कर यह पटरी जा रही है ॥१॥

बडकल्लागिह हसुवु बरिबयल मेयुतिदे ;  
 तन्न नेळलू तनगे कावागि सायुतिदे !  
 एलेयिल्लदा मरवो मळ्ळेय हारंसुतिदे ;  
 अदर नेळलेलुबुगूडने बिसिलु दहिसुतिदे !  
 शब्द निशशद्ववागिदे महाशून्यतेय शवदंते,  
 वंशाख रुद्रन समाधियंते !  
 यावुदनु लेक्किसदे कंबिदारि  
 बिसिल झळदलि इनिनु कंपनव तोरि,  
 कर्कशद कटुनीलकांतियनु कण्णो कारि,  
 हरियुतिदे रेलुदारि ! ॥२॥

नोडुतिहुदिदकिदंते हसु कोरळनेत्ति :  
 तन्न सद्दने तानु बिडदे बेंबत्ति  
 बंदितदो नागरिकतेय मारि बोरे हत्ति !  
 रेलु बंदितु रेलु !  
 जागरितवागुतिदे प्रजेयिल्लद बैलु ! ॥३॥

करिय लले, गाजुगण्णु ;  
 बरयल्लि होमे, मूमिनल्लि किडि, 'रैल्लिनेजण्णु !'  
 हरियुतिदे अडअडने सद्दमाडि  
 बोड्डदोदीनकेहुळु ! होट्टेयेल्लम अरिडि !  
 सिळ्ळु हाकुतिदे, किडिय सुसुतिदे ;  
 होमेयन्नूदुत्तिदे ; नुग्गियोडुतिदे !  
 जनरुक्खिहरेनु ?  
 सागुतिहवेनु सामानु ?  
 अल्ल, रेलोडुतिदे !  
 मानवरो ? सामानो ? एनादरेनंते ?  
 यंत्रकेका चित्ते ? अंतु रेलोडुतिदे ! ॥४॥

उधर कृशकाय गाय खाली मैदानमें शून्यको ही चर रही है। उसकी छाया उसीके लिए आग बनी तपा रही है और वह झुलसकर मर रही है। पत्र-शून्य वृक्ष वर्षाकी प्रतीक्षा कर रहा है। यह धूप उसकी छायाकी ठठरियोंको ही जला रही है। शब्द महाशून्यताके शवकी भाँति मौन पड़ा है। वैशाख (अंगारे बरसाता हुआ) रुद्रकी समाधिकी भाँति स्थित है। किन्तु इनमेंसे किसीकी भी परवाह किये बिना पटरी धूपकी लौ में काँप-काँपकर कर्कश एवं कटु नीलकान्तिको उगल रही है और अनवरत गतिसे चल रही है ॥२॥

गाय अचानक सिर उठाकर देख रही है। अपने शब्दका ही पीछा करती हुई सभ्यताकी मारी टीलेपर चढ़कर आ रही है। उधर देखो, रेल आई, चेतनाशून्य मैदान, शून्य जाग्रत हो रहा है! ॥३॥

काला सिर, काँचकी आँख, मुँहमें धुआँ, नाकमें चिनगारी लिये यह रेलका इञ्जिन चल रहा है। 'गड़-गड़' शोर मचाते हुए एक बहुत बड़ी बीरबहूटीकी भाँति यह रेलगाड़ी चल रही है। उसके पेट भरमें गाड़ियाँ ही गाड़ियाँ हैं। वह इञ्जिन सीटी बजा रहा है, चिनगारियाँ उगल रहा है, धुआँ उड़ रहा है। इञ्जिनने अब 'घुस घुस' आवाज करते हुए दौड़ना शुरू कर दिया। क्या लोग उसके अन्दर बैठे हैं? क्या सामान रवाना हो रहा है? नहीं-नहीं, रेल गाड़ी दौड़ी जा रही है! क्या मानव, क्या सामान, उसे किसकी परवाह? कुछ भी हो, उस यन्त्रको इन सबकी क्या चिन्ता? बस रेल तो जा रही है न! ॥४॥

सह सत्तितु ;; कण्णुमरेयायितु रैलु ;  
 प्रज्ञे तप्पिदे मत्ते बिसिलिनलि बैलु !  
 एनोंदु क्षणकालदलि मिंचिमरेयायतु ;  
 बयल निद्देयु कंड केट्टकनसायतु !  
 हा ! कत्तरिसिदोंदु नरवे साकु  
 नेत्तरनु शोषिसलु ! इन्नेनु बेकु ?  
 ई कब्बिणद कंबिदारि  
 अल्लि मेयुव दनद रक्तवनु दिनदिनवु हीरि  
 कोंडोयव नागरिकतेय नाडि,  
 एनलु नंबुवरारु ? आदरू नंबदिर बेडि !  
 सह सत्तिदे ! एल्लि होयतो एनो रैलु ?  
 मूर्छे होगिदे मत्ते बिसिलिनलि बोळु बैलु !  
 कर्कशद कटुनील कांतियनु कण्णे कारि,  
 हरियुत्तिदे, हरियुत्तिदे, हरियुत्तिदे रैलुदारि,  
 कंप्पिसुव कब्बिणद कंबिदारि ! ॥५॥

---

चारों ओर शान्ति छा गई, शोरगुलका अन्त हो गया। रेल आँखोंसे ओझल हो गई। अब फिर चिलचिलाती धूपमें मैदान शून्य हो पड़ा है! शून्य भूमि मूर्छित हो पड़ी है। पल भरमें कुछ झलककर अदृश्य हो गया। शून्यने दुःस्वप्न देखा! हाय! रक्तका शोषण करनेके लिए कटी एक रग ही पर्याप्त है। बस और क्या चाहिए? इस लोहेकी पटरीको समीप ही घास चरनेवाले चतुष्पादोंका रक्त दिन-दिन चूसकर कहीं ले जानेवाली यान्त्रिक सभ्यताकी नाड़ी कहूँ तो कौन विश्वास करेगा? फिर भी अविश्वास न कीजिए।

रेलका शब्द अब समाप्त हो गया है! न जाने रेल कहाँ चली गई। अब फिर चिलचिलाती धूपमें लुंज मैदान शून्य, नीरव हो गया है। कर्कश, कटु नीलकान्तिको आँखोंमें उगलकर चल रही है, चल रही है रेलकी सड़क, काँपनेवाली लोहेकी पटरी! ॥५॥

—————

## १४. बरलि जडद बडतनक्के जीवदैसिरि

अः मत्तदोम्मे उलि !  
 हक्कि, मत्तदोम्मे नलि !  
 बत्तिदेदेगे बरलि निन्न  
 गानदोळ्सरि !  
 बरलि जडद बडतनक्के  
 जीवदैसिरि !  
 रसद हनि  
 निन्न दनि ! ॥१॥

हाडु, मत्तदोम्मे हक्कि !  
 निन्न प्राणल्हस्सियुक्कि  
 जगत् प्राणनाडियल्लि  
 हरुष हरियलि !  
 जडदपार भारदल्लि  
 जीववुरियलि !  
 जगन्नेत्र जोंपिसुत्तिदे  
 मौन भारदि !  
 चैतन्यवे निद्रिसुत्तिदे  
 जडद्वारदि !  
 बण्णगरि,  
 वीणेमरि, ॥२॥

हाडु, हक्कि, मत्तदोम्मे;  
 इळियुवंते जडद हेम्मे !  
 अः ! मत्तदोम्मे उलि !  
 हक्कि, मत्तदोम्मे नलि !  
 बत्तिदेदेगे बरलि निन्न  
 गानदोळ्सरि;  
 बरलि जडद बडतनक्के  
 जीवदैसिरि ! ॥३॥

## १४. जड़के दारिद्र्यमें जीवनके रेखवर्षका सञ्चार हो

आह, बोल रे पंछी, और एक बार बोल। हँस-हँसकर बोल। शुष्क हृदयमें तेरी मधुर रागिनीकी वर्षा हो। जड़के दारिद्र्यपर तेरे चैतन्यकी विभूति विकीर्ण हो। तेरी ध्वनिमें रस-बिन्दुओंकी झड़ी है ॥१॥

पंछी, और एक बार गा। तेरी प्राणलहरी उमड़-उमड़कर जगत्की प्राण-नाड़ीमें हर्षका प्लावन करे, जड़के अपार भारमें पड़ा जीवचैतन्य जगमगा हो उठे, प्रज्वलित हो उठे। मौनके असहनीय भारसे जगके नेत्र तन्द्रालस हो गये हैं। जड़के द्वारपर चैतन्यभी ऊँघ रहा है, सो रहा है। हे रंगिणी, रागतरंगिणी, विपंची सुपर्णा गा एक बार और अपनी तान छेड़ दे। जड़का गर्व खर्व-खर्व हो जाय ॥२॥

आह पंछी बोल और एक बार बोल, और एक बार पुलकित होकर गा ! शुष्क एवं नीरस हृदयपर तेरी रागिनीकी वर्षा हो। जड़के दारिद्र्यपर जीवचैतन्यकी अमन्द वर्षा हो ॥३॥

## १५. मने मनेय तपस्विनिगे

---

मनेमनेयलि नीनागिहे गृहस्त्री :  
हेसरिल्लद हेसरु निनगे गृहस्त्री !  
हे दिव्य सामान्ये,  
हे भव्ये देवमान्ये,  
चिरन्तन अकीर्तिकन्ये,  
अन्नपूर्णो, अहंशून्ये,  
नमो निनगे नित्यधन्ये ! ॥१॥

राष्ट्रसभा अध्यक्षिणि  
श्रीमति आ सरोजिनि,  
ज्ञान्सिराणि लक्ष्मिबाइ  
अवरिगेल्ल महाताइ  
नीने बसिरु, नीने उसिरु,  
नीनिद्वरे अवर हेसरु !  
भद्रता समितियल्लि  
विजयलक्ष्मि वाग्मिने  
अध्यात्मिक सम्पत्तिन  
निन्न भूमदिदिरिल्लि  
राजकीयदल्पते ! ॥२॥

## १५. घर-घरकी तपस्विनीको

[ नारी पुरुषके भोगकी वस्तु नहीं; वरन् वह तो त्याग, तपस्या एवं प्रेमकी त्रिवेणी है। वह पुरुषके जीवनकी प्रेरणा है। प्रकृतिकी अनन्त सुषमाकी प्रतीक है। पुरुषकी सभी साधना, ज्ञान, विज्ञान आदि मातृत्वकी महिमाको ज्ञात करनेके किशोर-साहस मात्र हैं। कविका विश्वास है कि संस्कृतिके रत्नदीपको युग-युगोंसे अपने शील स्नेहसे नारियोंने ही उज्वल बना रहता है। मरणासन्न संस्कृति, द्वन्द्वात्मक भौतिकवादके बीच पिसी जाती हुई सभ्यता संस्कृतिकी रक्षा नारी मात्रसे सम्भव है। आधुनिक युगकी इस विभीषिकामे कवि नारीसे भारतीय संस्कृतिकी रक्षाकी प्रार्थना करते हुए नारीके प्रति अपने श्रद्धा सुमन अर्पित करता है। ]

तुम घरकी गृहश्री बनी हो। गृहस्त्री, तुम्हारा कितना अनामधेय नाम है? हे दिव्य सामान्या, हे भव्या, देवमान्या, चिरन्तन-अकीर्ति-कन्या, अन्नपूर्णा, अहंशून्या, हे नित्य धन्या, तुम्हें नमस्कार हो! ॥१॥

वह श्रीमती सरोजिनी राष्ट्रसभाकी अध्यक्षिणी है, वीर रमणी झाँसीकी रानी लक्ष्मीबाई आदि रमणियोंकी जन्मदात्री तुम्ही हो, महामाता, तुम्ही उनकी श्वास हो, तुम्हारे रहनेपर उनका नाम है, उनकी कीर्ति है। सुरक्षा समितिमें विजयलक्ष्मी पण्डितकी वाग्मिता तो है, देशकी कीर्ति-फताका पहरा रही है। किन्तु तुम्हारी आध्यात्मिक भूतिके समक्ष यह राजकीय साधना कितनी अल्प है! कितनी तुच्छ है! ॥२॥

अङ्गु मनेये पर्णशाले ;  
 ओलेय अग्नि मखज्वाले !  
 बिडुविल्लद कटु तपस्ये ;  
 हृण्णिमेयू अमावास्ये !  
 आदरू अदीनास्ये  
 नीने नमगे धैर्य, आशे !  
 निम्न पादकिदो पूजे :  
 पूत कवन धवळ लाजे ॥३॥

बॅकि, होंगे ; होंगे, बॅकि !  
 मसि, मुसुरे ; मुसुरे, मसि !  
 आदरेनु ? निशयंकि  
 चौधुरानि महीयसि !  
 नीने गरति, नीनेये रति,  
 एदे एदेगू हूवारति :  
 नीनिरदिरे लोकद गति  
 दुर्गति, मृति, देवरे गति !  
 रक्षिसु, ओ दैनंदिन  
 संसारद रसरूपद  
 चिरतापसि, सुर रूपसि,  
 यत्तिसति शिवे, ओ पार्वति ! ॥४॥

ह्रिडियदिरुलि निमगादरु  
 मंडसरा कुत्त :  
 प्रस्थमतिम पडेयुबोंदु  
 प्रापंचिक पित्त !  
 होसलाचेगे नीनोतरे  
 होसलीचेगे बेळकिल्ल :  
 हेसरासेगे नी सोतरे  
 उसिरासेये नमगिल्ल ! ॥५॥

पाकशाला ही तुम्हारी पर्णशाला है। चूल्हेकी आग ही मखकी ज्वाला है। तुम्हारी कठोर तपस्या निरन्तर चलती रहती है। तुम्हारे लिए इस तपस्याके कारण पूर्णिमा भी अमावस्या बनी है। फिर भी तुम्हारा बदन दीन नहीं बनता है। तुम ही हमारे धैर्य हो, आशा हो। तुम्हारे चरणोंपर लो यह पूजा, पूत कविताओंकी लाजाकी पूजा ! ॥३॥

आग धूम, धूम आग ! मसि, कीचड़, कीचड़ एवं मसि ! किन्तु उससे तुम निश्चिन्त हो, अविचलित हो, अतः तुम महीयसी हो। तुम ही गृहिणी हो, तुम ही रति हो, सबके हृदयकी कुसुम आरती हो। तुम्हारे बिना लोककी दुर्गति होगी, मृत्यु हो जायेगी। भगवान ही जाने कि तुम्हारे बिना संसारकी क्या गति होगी। हे दैनंदिन संसारकी रसरूपिणी, चिरतापसी, सुररूपसी तुम ही यतिसती शिवा हो। हे पार्वती हमारी रक्षा करना ॥४॥

कमसे कम तुम्हारी पुरुषोंकी भाँति दुर्गति न होवे। ख्याति पानेका प्रापञ्चिक पित्थ या पागलपन तुमपर सवार न होवे। यदि तुम देहली पारकर बाहर जाओगी तो देहलीके अन्दर अन्धकार हो जाएगा। यदि नाम पर तुम रीझ जाओगी तो हमारे लिए जीनेकी सम्भावना ही नहीं रह जाएगी ॥५॥

निम्नदले हिम्मेद्विदे  
 जन जनदा कुसंस्कृति;  
 निम्नदले सेडेतडगिदे  
 मनमनदा असंस्कृति ।  
 रामायण महाभारत  
 शाकुंतल कादंबरि  
 बहुकविगळ रस सृष्टिय  
 बहुकलेगळ रसदृष्टिय  
 तुष्टिगे मेण् पुष्टिगे नीन्  
 देवतेयागिरुवे ; ॥६॥

आ सीतेयो माइवेतेयो  
 सावित्रियो दमयंतियो  
 आरादरु सरिये  
 हेगलेणे निनगा पेमेंगे  
 पिरिदनु नानरिये ! ॥७॥

ताळुत्तिदे बाळुत्तिदे  
 निम्नदेम्म इळे ।  
 हे दिव्ये, सामान्ये,  
 मनेमनेया ऊर्मिळे,  
 गृहिणि, गरति, देवि, तायि,  
 हेसरिल्लद महिळे,  
 मणिवनु इदो निम्नडिगी  
 हुसिवेसरिगे मरुळागद  
 हेसरोल्लद हसुळे ! ॥८॥

जन-जनकी कुसंस्कृति तुम्हारे ही कारण भागती जा रही है। तुम्हारे ही कारण मनकी असंस्कृति कहीं दूर जा छिपी है। रामायण, महाभारत, शाकुन्तल, कादम्बरी आदिके अनेक कविजनोंकी रस सृष्टि तथा अनेक कलाओंकी रस दृष्टिकी तुष्टि एवं पुष्टिके लिए तुम देवता बनी हो ॥६॥

वह चाहे सीता हो, महाश्वेता हो, सावित्री हो, दमयन्ती हो, कोई भी हो तुम्हारी महिमाके सामने और किसी भी वस्तुको मैं देख नहीं सकता ॥७॥

तुम्हारे ही कारण हमारी धरित्री क्षमा बनी है, वसुन्धरा बनी सबका धारण कर रही है। हे दिव्या, हे सामान्या, हे घर घरकी उर्मिला गृहिणी, देवी, माई, अनामिका महिला, लो, इधर तुम्हारे चरणोंमें प्रसिद्धिसे दूर भागनेवाला यह शिशु नमन करता है ॥८॥

सौख्यद नेले, शांतिय मने,  
 सौन्दर्यद शिवमन्दिरे,  
 सामान्यद सिरितवरे,  
 हिडियदिरलि निनगवरा  
 होगळिकेया कीर्तिय शनि,  
 गृह गृह गृह तपस्विनी !  
 पत्रिकेगळ दप्पक्षर  
 मेण् चित्रद क्षणिकके नी  
 बेप्पागदे, हे जननी,  
 ओप्पागिरु, ओलवागिरु;  
 निजमतदलि ऋजुपथदलि  
 नडेसेम्मनु, ऋतर्दाशिनि  
 हे मनुकुल कल्याणी ! ॥९॥

-----

तुम्हीं सौख्यका आगार हो, शान्तिका निकेतन हो। सौन्दर्यका शिव-मन्दिर हो। सामान्यकी श्रीसम्पन्न जन्मभूमि हो, जन्मदात्री हो। तुम्हें उनकी प्रशंसाका, कीर्तिका शनि ग्रसित न करे, हे गृह-गृहकी तपस्विनी! हे जननी! तुम वृत्तपत्रोंके मोटे अक्षर एवं चित्रोंपर न रीझना। तुम हमारे लिए ज्योति बनी, प्रेम बनी, जगमगाती रहो! सत्यके ऋजु पथकी ओर हमको सञ्चालित करो। हे ऋतु-दर्शिनी, हे मनुकुल कल्याणि, यही मेरी कामना है ॥९॥

---

## १६. अनिकेतन

ओ नन्न चेतन,  
आगु नी अनिकेतन !  
रूप रूपगळनु दाटि,  
नाम कोटिगळनु मीटि,  
एदेय बिरिये भावदीटि,  
ओ नन्न चेतन,  
आगु नी अनिकेतन ! ॥१॥

नूरु मतद होट्ट तूरि,  
एल्ल तत्त्वदेल्ले मीरि,  
निर्दिगंतवागि एरि  
ओ नन्न चेतन,  
आगु नी अनिकेतन ! ॥२॥

## १६. अनिकेतन

[ मानवतावादी कवि विश्वप्रेमके अनन्त प्राङ्गणमें वैश्वानर बन विहार कर रहा है। उसे यह अनुभव होने लगता है कि राष्ट्रीयता, जो स्वर्गादपि गरीयसी है, वर्तमान परिस्थितिमें एक अभिशाप बन गयी है। बड़े-बड़े राष्ट्र राष्ट्रीयताके नाम पर मानवताके वक्षपर ताण्डव नृत्य कर रहे हैं। फलतः मानवता मरणासन्न हो क्रन्दन कर रही है। अतः मनुष्यको चाहिए कि वह भिन्न-भिन्न संकीर्ण सीमाओंको अतिक्रान्तकर अनन्तमें विचरण करे। तभी मानव उदारचरित बन सकता है, “वसुधैव कुटुम्बकम्” माननेवाला बन सकता है। अणुबम एवं उद्जन बमकी भीषण विभीषिकासे सत्रस्त मानवको वर्तमान परिस्थितिमें इससे बढ़कर और क्या सन्देश हो सकता है? ]

हे मेरे चेतन तुम अनिकेतन बनो! रूप रूपोंको लाँघकर, नाम-रूप आदि उपाधियोंको अतिक्रान्त कर भव्य भावनाओंसे भरे हृदयका विकास करे। हे मेरे चेतन, तुम अनिकेतन बनो ॥१॥

सैकड़ों मत-मतान्तरोंकी फटकनियोंको वायुमें उड़ाकर सभी तत्वोंकी सीमाओंका अतिक्रान्त करो और सीमा-विहीन बने उर्ध्व भूमिपर चढ़कर तुम अनिकेतन बनो हे मेरे चेतन ! ॥२॥

एल्लियू निल्लदिरु;  
मनेयनेदू कट्टदिरु;  
कोनेयनेदू मुट्टदिरु;  
ओ अनन्तवागिरु !  
ओ नन्न चेतन,  
आगु नी अनिकेतन ! ॥३॥

अनन्त तान् अनन्तवागि  
आगुतिहने नित्ययोगि ;  
अनन्त नी अनन्तवागुः  
आगु, आगु, अगु, आगु !  
ओ नन्न चेतन,  
आगु नी अनिकेतन ! ॥४॥

---

कहीं भी न रुकना, कहीं भी घर न बसाना, कभी भी अन्त न पाना । हे मेरे चेतन, अन्त बनो, अनन्त बनो, अनिकेतन बनो ! ॥३॥

अनन्त भी आप अन्त्यको पार कर अनन्त हो नित्ययोगी बन रहा है । हे अनन्त, तुम अनन्त बनो । बनो, बनो, बनो, बनो ! हे मेरे चेतन, तुम बनो बनो ! अनिकेतन ! ॥४॥

---











